

मास्टर ऑफ आर्ट्स (समाजशास्त्र)

एम. ए. (समाजशास्त्र)

प्रथम वर्ष

उत्कृष्ट समाजशास्त्रीय परम्परायें
(Classical Sociological Traditions)

(प्रथम प्रश्न पत्र)



दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म.प्र.) - 485334

उत्कृष्ट समाजशास्त्रीय परम्परायें (Classical Sociological Traditions)

संस्करण—2016

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :

प्रो. नरेश चन्द्र गौतम

कुलपति

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

लेखक :

डॉ. राजेश त्रिपाठी

एसोसियेट प्रोफेसर, ग्रामीण प्रबन्धन विभाग

सम्पर्क सूत्र :

निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष— 07670—265460, इ—मेल— distance.gramodaya@gmail.com, website: www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :

कुलसचिव

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

कापीराइट © : महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

आभार : यह अध्ययन सामग्री संबंधित पाठ्यक्रम और विषय के लिए विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई है। अध्ययन सामग्री को सरल, सुरुचिपूर्ण और बोधगम्य बनाने की दृष्टि से अनेक स्रोतों से प्रेरणा, संदर्भ और सामग्री ली गई है। सभी के प्रति आभार। अध्ययन सामग्री में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। विश्वविद्यालय का इससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संदेश

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना मध्यप्रदेश शासन द्वारा एक पृथक अधिनियम से 1991 में सुप्रसिद्ध समाजसेवी पद्मविभूषण नानाजी देशमुख के प्रेरणा और प्रयासों से चित्रकूट में मंदाकिनी के तट पर हुई। विश्वविद्यालय का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक मानव संसाधन तैयार करना है। विगत 25 वर्षों की समर्पित सेवाओं में विश्वविद्यालय ने ज्ञान—विज्ञान के विविध आयामों पर अपने शिक्षा, शोध, प्रशिक्षण और प्रसार कार्यों से छाप छोड़ी है।



ग्रामीण क्षेत्र में संसाधनों के अभाव तथा सामाजिक—परिवारिक परिस्थितियों के कारण निरंतरता से अध्ययन करने में बाधायें आती हैं। विश्वविद्यालय ने इस समस्या के समाधान के लिए गुणवत्तायुक्त दूरवर्ती शिक्षा को प्रत्येक ग्रामीण के घर—आँगन तक पहुँचाने का संकल्प लिया है। विश्वविद्यालय का दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील है।

मुझे प्रसन्नता है कि दूरवर्ती शिक्षा के विद्यार्थियों को स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री मुद्रित और व्यवस्थित रूप में पहुँचाये जाने का यह प्रयास न सिर्फ दूरवर्ती शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ायेगा बल्कि छात्रों को गहराई से अध्ययन करने की दिशा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

A handwritten signature in black ink, appearing to read "Naresh Chandra Gautam".

प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति

उत्कृष्ट समाजशास्त्रीय परम्परायें (Classical Sociological Traditions)

इकाई-प्रथम

परम्परागत सामन्ती अर्थ व्यवस्था और सामाजिक संचरना, औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव और समाज, अर्थ व्यवस्था में उत्पादन के नये रूप, उत्पादन में पूँजीवादी व्यवस्था का उद्भव, पूँजीवाद की प्रकृति और विशेषतायें, चिन्तन और विवेचन पर पूँजीवाद के प्रभाव का प्रकाशन

इकाई-द्वितीय

कार्ल मार्क्स-मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन सिद्धान्त, मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, परिवर्तन और इसके नियमों का एक दर्शनशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य, इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, विभिन्न युगों में मानव समाज के रूपान्तरण की एक व्याख्यात्मक विवेचना, आर्थिक निश्चयवाद, उत्पादन के प्रकार और सामाजिक संरचना, मार्क्स का विश्लेषण, पूँजी की उत्तरारोत्तर वृद्धि व केन्द्रीकरण के कारण पूँजीवाद के उद्भव एवं विकास, अतिरिक्त मूल्य एवं शोषण की अवधारणा, वर्ग और वर्ग संघर्ष का उद्भव, सर्वहारा क्रान्ति और पूँजीवाद का भविष्य, वर्गीन समाज, पूँजीवादी समाज में अलगाव-अलगाव के उत्तरार्दयी कारक तथ अलगाव के कारण उत्पन्न सामाजिक विमुखता, राजनीतिक शक्ति की अवधारणा, राज्य का सामाजिक वर्गों से सम्बन्ध, सर्वहारा क्रान्ति के पश्चात् राज्य का भविष्य, विचारधारा का सिद्धान्त, विचारधारा संरचना के एक उत्कृष्ट भाग के रूप में, विचारधारा से सम्बन्धित तीन सिद्धान्त।

इकाई-तृतीय

ईमाइल दुर्खीम- दुर्खीम की बौद्धिक पृष्ठभूमि, समाज की स्थिति व विघटन के प्रति उनकी चिन्ता, औद्योगिक क्रान्ति, सामाजिक विघटन के वसीयत के रूप में, पूँजीवादी समाज में श्रम विभाजन का बढ़ता दायरा, यांत्रिक एवं सावयवी एकता, श्रम विभाजन वृद्धि की व्याख्या, श्रम विभाजन का विकृत रूप, आत्म हत्या का सिद्धान्त, आत्म हत्या के पूर्व सिद्धान्तों की समीक्षा, आत्महत्या पर दुर्खीम के विशिष्ट समाजशास्त्रीय उपागम, आत्महत्या के प्रकार, समाजशास्त्र से व्यक्ति के एकीकरण की समस्या, धर्म का सिद्धान्त, धर्म के उद्भव और उसकी भूमिका से सम्बन्धित पूर्व सिद्धान्त, धर्म की संरचना, पवित्र और अपवित्र, पवित्रता के साधन, पवित्र वस्त्रये मूल्यों के प्रतीक के रूप में, समाज एक सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में, धार्मिक कर्मकाण्ड और उसके प्रकार, धार्मिक कर्मकाण्डों, विश्वासों एवं कर्मकाण्डों की सामाजिक भूमिका, समाजशास्त्र को पद्धतिशास्त्र का योगदान, समाजशास्त्र विज्ञान के रूप में, सामाजिक तथ्यों की अवधारणा-समाजवाद।

इकाई-चतुर्थ

मैक्स बेबर-सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त, बेबर की बौद्धिक पृष्ठभूमि, आधुनिक पूँजीवाद का विश्लेषण, प्रोटेस्टेण्ट धर्म और पूँजीवाद के उद्भव के सम्बन्धों के संदर्भ में सामाजिक परिवर्तन में, विचारों और मूल्यों की भूमिका पर बेबर की विचारधारा, सत्ता का सिद्धान्त, सत्ता और शक्ति, सत्ता के प्रकार और उनके वैध आहार उनकी प्रमुख विशेषतायें, प्रशासन की विधियाँ और उत्तराधिकार के स्वरूप, नौकरशाही के सिद्धान्त, पूँजीवाद और बढ़ता तर्कवाद एवं आधुनिक नौकरशाही का उद्भव, बेबर की मॉडल नौकरशाही, राजनीतिक नेताओं और नौकरशाही के बीच सम्बन्ध, प्रस्थिति, वर्ग और शक्ति की अवधारणा, समाजविज्ञान को पद्धतिशास्त्र एक व्याख्यात्मक विज्ञान के रूप में, वस्टर्हैन की अवधारणा और इनके आदर्श प्रकार।

इकाई-पंचम

विलफ्रेडो परेटो- परेटो की बौद्धिक पृष्ठभूमि, पद्धतिशास्त्र का योगदान, परेटो का तर्कशास्त्र प्रयोगिक पद्धति, तर्कसंगत और अतर्कसंगत क्रियाओं का वर्गीकरण, परेटो के विशिष्ट चालक और भ्रान्त तर्क के सिद्धान्त के संदर्भ में अतर्क संगत क्रियाओं का स्पष्टीकरण, विशिष्ट चालकों और भ्रान्त तर्कों का वर्गीकरण, सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त-अभिजात वर्ग और जनसमुदाय, अभिजनों के प्रकार, उनका वर्गीकरण, अभिजनों का परिम्मण।

समाजशास्त्र की उत्पत्ति

NOTES

मानव प्रकृति का सबसे अनोखा उपहार है और मानव का सबसे अनोखा महाकाव्य स्वयं समाज है। इस समाज का अध्ययन समाजशास्त्र नामक विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इसका उद्भव एवं विकास कब और कैसे हुआ? यह प्रश्न आज भी विचारणीय है।

लेकिन दूसरी ओर यह भी कहा गया है कि समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास प्लेटो, अरस्तू मनु तथा कौटिल्य ने सदियों पूर्व कर दिया था। इसलिए कहा जाता है कि जब से भूमण्डल है। तभी से समाज भी है।

इन तथ्यों के संदर्भ में रॉबर्ट बी० स्पीड ने ठीक ही कहा है कि समाज का अतीत तो काफी प्राचीन और लम्बा हो लेकिन इतिहास बहुत संक्षिप्त। गिर्खर्ट ने भी कहा है कि 'यदि मानव जन्म से दार्शनिक है तो स्वाभाव से एक समाजशास्त्री भी हो।'

यद्यपि सामाजिक पहलुओं के अध्ययन की लम्बी परम्परा रही है फिर भी 18वीं शताब्दी में यूरोप की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं बौद्धिक परिस्थितियों ने समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिसके फलस्वरूप इस विषय का संस्थागत रूप में उद्भव एवं विकास 19वीं शताब्दी के चौथे दशक में आगस्ट काम्टे द्वारा 22 दिसम्बर 1838 में किया गया जिसे पहले इन्होंने सामाजिक भौतिकी कहा था।

Sociology शब्द लैटिन भाषा के *Socius* तथा ग्रीक भाषा के *Logos* शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'समाज का विज्ञान'। फ्रांसीसी समाजशास्त्री 'आगस्ट काम्टे ने जिन्हें

समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है हालाँकि उनके प्रयासों के फलस्वरूप भी फ्रांस में

समाजशास्त्र का सुचारू रूप से शुरू नहीं हो सका।

NOTES

सर्वप्रथम काम्टे ने धार्मिक और तात्त्विक अध्ययनों के आधार पर अवलोकन, परीक्षण और वर्गीकरण के प्रत्यक्षात्मक आधार पर समाज का विश्लेषण किया।

परम्परावादी सामन्ती आर्थिक एवं सामाजिक संरचना—

सामन्ती सामाजिक आर्थिक संरचना का उदय एक तरफ दासमूलक समाजों और दूसरी ओर उन समाजों के अन्त्विरोधों की समस्या निवारण के साधन के रूप में हुआ। सामन्तवाद का जन्म विभिन्न आर्थिक परिस्थितियों में होने के कारण विश्व में अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग रूपों में हुआ। सामन्ती युग में उत्पादन के साधनों पर सामन्तों का अधिकार होता था ये दास उत्पादन के साधनों विशेष रूप से भूमि के स्वामी होते थे। गरीब अर्हदास किसान का सामन्तों के अधीन थे। उत्पादन का कार्य इन्हीं भूमिहीन कृषकों से करवाया जाता था। किसान दास न थे पर उन पर विभिन्न प्रकार के बन्धन थे। उन्हें सामन्तों की भूमि पर कृषि कार्य बेगारी के रूप में करना पड़ता था तथा युद्ध के समय सैनिक के रूप में कार्य करना पड़ता था। इसके बदले उन्हें सामन्तों से निर्वाह हेतु भूमि मिलती थी। निजी सम्पत्ति की धारणा इस युग में काफी प्रबल हुई। सामन्तों द्वारा किसानों का काफी शोषण होने लगा जिसमें सामन्तों एवं किसानों के मध्य संघर्ष होने लगा। इस युग में सुख सुविधाओं के बदले में धार्मिक पुरोहितों ने सामन्तों के गुणगान किये तथा राजा के दैवीय अधिकार के नारे को बुलन्द किया। इस व्यवस्था के अवशेष आज भी विकासशील तथा अविकसित देशों के सामाजिक, आर्थिक संरचना में आज भी उपस्थित है।

यूरोप में सामन्तवादी व्यवस्था पाँचवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई जो कि 15वीं शताब्दी

तक चली। रामशरण शर्मा का मत है कि भारत में सामन्ती व्यवस्था ईसा के 300 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के बाद मध्यकालीन और ब्रिटिश युग तक रही।

NOTES

सामन्ती व्यवस्था के विषय में विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। कार्ल मार्क्स का मत है कि सामन्तवादी व्यवस्था इस प्रकार के उत्पादन विधियों, उत्पादन, शक्तियों एवं उत्पादन सम्बन्धों से जुड़ी हुई है।

यूरोपीय सामन्ती व्यवस्था के लक्षण

मोरिस डाब ने सामन्ती व्यवस्था को कृषि दासता का पर्याय माना है। उनके अनुसार इस व्यवस्था में काश्तकारों को बाध्य होकर उत्पादन के एवज में निश्चित सेवा देनी पड़ती हो। डाब ने यूरोपीय सामन्ती व्यवस्था के निम्नलिखित लक्षण बतलायें हैं—

1. सामन्ती व्यवस्था में तकनीकी का स्तर काफी निम्न होता है।
2. भूमि से ली जाने वाली उपज काश्तकारों के स्वयं के उपयोग के लिए होती थी। उपज अधिक होने पर गाँव के लोग उसका उपयोग करते थे। किसी भी अवस्था में वह उपज बाजार हेतु नहीं थी।
3. कृषि के बदले काश्तकार को अनिवार्य रूप से भू-स्वामी का काम देना पड़ता था जिसे काम बेगार कहा जा सकता है।
4. सामन्ती व्यवस्था में उत्पादन प्रणाली विकेन्द्रित थी। राजा का इसमें कोई उत्तरदायित्व नहीं था। यह सम्बन्ध भू-स्वामी एवं काश्तकार के मध्य था।
5. सामन्ती व्यवस्था में भू-स्वामी काश्तकारों का शोषण करता था।

भारत की सामन्तवादी व्यवस्था के लक्षण—

भारत में सामन्त व्यवस्था एक प्रकार से स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था थी जो कि किसानों की आवश्यकताओं को पूरा करती थी। रामशरण शर्मा ने भारतीय सामन्तवादी व्यवस्था के निम्नलिखित लक्षण बतायें हो—

1. राजा, महाराजाओं द्वारा खाली पड़ी भूमि या छोड़ी गई भूमि को दूसरों के नाम स्थानान्तरित करना।
2. जमींदारों द्वारा बेगार लेना।
3. किसानों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना वर्जित, रामशरण शर्मा द्वारा बताये गये सामन्तवादी व्यवस्था में दो वर्ग हैं।
 - क. जागीरदारों का एक पुरजोर वर्ग जमींदार
 - ख. सेवा करने वाला किसान

नुरुल हसन ने सामन्ती व्यवस्था और पूँजीवादी व्यवस्था को एक दूसरे के पर्यायवाची कहा है।

यूरोपीय एवं भारतीय सामन्ती व्यवस्था की तुलना

भारत की सामन्ती व्यवस्था के विश्लेषण में यूरोप की सामन्ती व्यवस्था की तरह आर्थिक बुनियादी संरचना चर्चा उतनी नहीं की जाती जितनी राजनैतिक कानूनी या वैचारिक स्तर पर व्याख्या की जाती है। अक्षय देसाई का मत है कि भारतीय सामन्तवादी व्यवस्था यूरोपीय सामन्तवादी व्यवस्था से भिन्न है। यूरोप में खेती करने वाला काश्तकार परम्परागत रूप से अपनी कृषि भूमि का मालिक था। भारत में काश्तकार इस प्रकार की भूमि का मालिक नहीं था। यहाँ पर काश्तकार परम्परा से जांगीरदार या जमींदार को कृषि

पर कर (लगान) देता आ रहा था। इसी कर ने इसको प्रजा बना दिया। रामशरण शर्मा एवं यादव भारत की सामन्ती व्यवस्था को यूरोप के सामन्ती व्यवस्था के समान मानते हैं उनका मत है कि सामन्ती व्यवस्था का आधार कृषि पद्धति है।

NOTES

निष्कर्ष

सामन्तवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर सामन्तों का अधिकार होता था। ये सामन्त उत्पादन के साधनों विशेषतः भूमि के स्वामी होते थे। गरीब अर्द्धदास किसान इन सामन्तों के आधीन थे। उत्पादन का कार्य इन्हीं भूमिहीन किसानों से कराया जाता था। किसान दास नहीं थे किन्तु उन पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध थे। इन्हें सामन्तों की भूमि की भी बुआई जुताई आदि बेगार में करनी पड़ती थी तथा युद्ध के समय उनको सैनिकों के रूप में कार्य करना पड़ता था तब इस सबके बदले में उन्हें सामन्तों से अपने निर्वाह हेतु भूमि मिलती थी। निजी सम्पत्ति की धारणा प्रबल थी। इस युग में दो वर्ग थे—

1. भूमि स्वामी
2. किसान

भूमि स्वामी अर्थात् सामन्तों द्वारा किसानों का काफी शोषण किया जाता जिसके परिणामस्वरूप दोनों वर्गों में संघर्ष होता था।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव और समाज

समाजशास्त्र के उदय में दो क्रान्तियों की विशेष भूमिका रही है। फ्रांस की क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति। क्रान्ति शब्द का प्रयोग राजनैतिक एवं सामाजिक विचारों में हुए परिवर्तनों के लिए किया जाता है। यह परिवर्तन रक्तपात तथा हिंसक घटनाओं के द्वारा

होता है तथा कभी-कभी अहिंसक घटनाओं से भी होता है। फ्रांस की क्रान्ति के परिणाम

स्वरूप सम्पूर्ण यूरोप अनेक देशों में कई छोटी-बड़ी क्रान्तियाँ हुईं।

NOTES

औद्योगिक क्रान्ति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1884 में अनीता टायनवी ने किया। किन्तु वास्तव में इसका प्रयोग सन् 1837 में ही फ्रांसीसी लेखक ब्लांकी ने किया और बाद में जेबन्स इन्जेल्स तथा कार्ल मार्क्स ने प्रयोग किया। सन् 1750 से औद्योगिक शब्द प्रयोग में लाया गया। औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग अधिक उत्पादन एवं भाप की शक्ति के लिये किया गया। मूलतः औद्योगिक का अर्थ अनेक श्रम संचयी उपायों एवं मशीनों का उत्पादन विधियों में प्रयोग करने से है।

उत्पादन में वृद्धि तथा भाप के प्रयोग से परिवर्तन इतनी तीव्रगति से हुये कि जीवन व कार्य के अनेक पक्ष-वितरण एवं उत्पादन राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण जनसंख्या की गतिशीलता व वित्त व्यवस्था आदि पर काफी प्रभाव पड़ा जिसके कारण इसके लिए औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व इंग्लैण्ड भी एक कृषि प्रधान देश था किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के बाद वहाँ पर उद्योग धन्धों का तीव्र विकास होने लगा। उत्पादन प्रक्रिया में मशीनों का प्रयोग होने लगा। जिससे पूँजी और श्रम के सम्बन्ध में परिवर्तन आया। पूँजीपतियों का उद्योगों पर नियंत्रण हो गया तथा श्रमिक उनके आदेशों के आधीन कार्य करने लगे। बड़े स्तर पर उत्पादन होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रारम्भ हुआ। इन परिवर्तनों ने इंग्लैण्ड की अर्थ व्यवस्था का स्वरूप ही बदल दिया जिस नवीन औद्योगिक प्रणाली की उत्पत्ति इंग्लैण्ड में हुई। वह विश्व के अन्य देशों में भी फैल गई।

औद्योगिक क्रान्ति के प्रमुख प्रभाव

डॉ० एल०सी०ए० नोल्स के अनुसार 'औद्योगिक क्रान्ति' के छः महान परिवर्तन अथवा

विकास हुए जो परस्पर एक दूसरे पर निर्भर थे ये निम्नलिखित प्रमुख प्रभाव थे।

NOTES

1. लोहा निर्माण में क्रान्ति।
2. वस्त उद्योग में वाष्पशक्ति का उपयोग
3. इंजीनियरिंग का विकास
4. कोयला उद्योग का विकास
5. रासायनिक उद्योगों का विकास
6. यातायात के साधनों में परिवर्तन

औद्योगिक क्रान्ति के सामाजिक प्रभाव

1. जनसंख्या वृद्धि
2. परम्पराओं में परिवर्तन
3. संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन
4. स्त्रियों की स्थिति में सुधार
5. नैतिकता में गिरावट
6. आवश्यकताओं में वृद्धि
7. मध्यम वर्ग का उदय
8. समाज सुधार
9. श्रमिकों के महत्व में कमी
10. वर्ग संघर्ष की उत्पत्ति
11. मजदूर संघों का जन्म

12. परिवारिक जीवन में गिरावट

NOTES

आर्थिक परिणाम—

1. आर्थिक विषमता
2. श्रमिक वर्ग का उदय
3. समाजवादी विचारधारा का उदय
4. उद्योगों की रूपरेखा में परिवर्तन
5. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की मात्रा, प्रकृति एवं दिशाओं में परिवर्तन
6. उद्योग में स्थानीयकरण में परिवर्तन
7. तेजी व मन्दी का प्रादुर्भाव
8. अन्य प्रभाव

अर्थ व्यवस्था में उत्पादन के नये रूप

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप एक नये युग तथा नवीन आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का जन्म हुआ। परम्परागत सामाजिक व्यवस्था तथा उसके बन्धन शिथिल होने लगे तथा औद्योगिक सभ्यता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हुई। परम्परागत मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों में गिरावट आई। स्वार्थवादी एवं व्यक्तिवादी मूल्यों का विकास हुआ। एक नवीन आर्थिक व्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई तथा यातायात एवं संचार के साधनों में तीव्रगति से विकास हुआ। सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन हुआ। औद्योगिक क्रान्ति ने समाज में वर्ग संघर्ष को जन्म, गृह उद्योगों को नष्ट किया और सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण पूँजीपति, धनी और मजदूर गरीब वर्ग को स्थापित किया। यह देश के लिए लाभकारी सिद्ध

हुआ क्योंकि इससे देश में पूँजी बढ़ी और उद्योगों और व्यवसायों का विस्तार हुआ। परन्तु साथ ही यह हानिकारक भी रहा क्योंकि छोटे-किसान व कुटीर उद्योगों में लगे लोग फैक्टरी मजदूरों में परिवर्तित हो गये। परिवार से दूर रहकर खराब दशाओं के बावजूद श्रमिक काम करने को बाधित रहे और उनकी सेहत व पारिवारिक जिन्दगी पर इसका कुप्रभाव पड़ा।

समाज व अर्थव्यवस्था पर अच्छे प्रभाव

1. व्यावसायिक प्रगति
2. नगरीकरण
3. राष्ट्रीय आय में वृद्धि
4. ऊँचा जीवन स्तर
5. बैंक व्यवस्था?
6. मजदूरों को लाभ जैसे—
 - अ. काम की समयावधि निश्चित हो गई
 - ब. मजदूरी में वृद्धि हुई और
 - स. मानसिक विकास के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त होने लगे।

समाज व अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव—

1. गृह उद्योगों का पतन
2. बेरोजगारी
3. महिला तथा बाल श्रम
4. काम की दशायें

5. पारिवारिक विघटन

6. सामाजिक दशायें

NOTES

औद्योगिक क्रान्ति ने अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। जैसे अपराध, बाल अपराध, आत्महत्या, मद्यपान, वेश्यावृत्ति, जुआ, जेबकटी, आवासीय समस्या आदि। इन समस्याओं के कारण मानव सभ्यता पर अनेक प्रकार के संकट उपस्थित होते हैं और समाज विघटन की ओर अग्रसर होता है।

नवीन उत्पादन प्रणाली से उत्पन्न दोषों को दूर करने के लिए लोगों में समाज सुधार की भावना जागृत हुई। असमानता और अन्याय को दूर करने के प्रयास किये जाने लगे।

उत्पादन में पूँजीवादी व्यवस्था का उद्भव

पूँजीवाद एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है तथा प्रत्येक व्यवसाय में अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने के लिए व्यक्ति को राज्य की तरफ से पूर्णतया छूट होती हो। लाभ व्यक्ति को प्राप्त होता है। अतः व्यक्ति लाभ की दृष्टि से अपने व्यवसाय का चयन करता है। पूँजीवाद का उदय उत्पादन शक्तियों तथा सम्बन्धों से जुड़ा हुआ है। यूरोप में पूँजीवाद का विकास 15वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक हुआ। सामन्तवादी सामन्त एवं किसान वर्ग में हुए संघर्ष के परिणाम स्वरूप पूँजीवाद का जन्म हुआ।

पूँजीवाद का अर्थ एवं परिणाम

1. इक्स तथा हूटस के अनुसार पूँजीवाद आर्थिक संगठन की ऐसी प्रणाली है जिसमें निजी सम्पत्ति पायी जाती है तथा मनुष्यकृत और प्राकृतिक पूँजी का प्रयोग निजी लाभ के लिए किया जाता है।

2. जन स्ट्रेची के अनुसार— पूँजीवाद से हमारा तात्पर्य उस प्रणाली से है जिसमें खेतों, कारखानों एवं खानों पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता हो। इन उत्पत्ति के साधनों पर वे लोग कार्य करते हों जो इनके स्वामी नहीं होते तथा लोगों के लाभ के लिए कार्य किया जाता है जो इनके स्वामी होते हैं। पूँजीवाद संसार में प्रेम के लिए नहीं वरन् लाभ कमाने के लिए हो।

3. प्रो० पीगू के अनुसार— पूँजीवाद वह व्यवस्था है जिसमें उत्पादन के साधनों का मुख्य भाग उद्योग में लगाया जाता है जिससे उत्पादन के भौतिक साधनों पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व होता है या उनके द्वारा किराये पर लगाये जाते हैं और उनके आदेशानुसार इस प्रकार उपयोग में लाये जाते हैं जिन वस्तुओं और सेवाओं को उत्पन्न करने में सहायता देते हैं उन्हें लाभ पर बेंचा जा सकता है।

पूँजीवाद की प्रकृति और विशेषतायें

पूँजीवाद के समर्थकों का मत है कि पूँजीवाद की प्रकृति समाज को लाभ पहुँचाना है जिसके कारण यह अन्य आर्थिक प्रणाली से अच्छी है पूँजीवाद की प्रकृति निम्नलिखित है—

1. तकनीकि प्रगति
2. उद्यमी शक्ति का विकास
3. परिस्थितियों के साथ अनुकूलन

4. उपभोक्ताओं को अधिकतम संतुष्टि

5. योग्यतानुसार पुरस्कार

6. उच्च जीवन स्तर

7. अधिक उत्पादन

8. प्राकृतिक साधनों का पूर्ण दोहन

विशेषतायें—

1. व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार— पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को रख सकता है तथा उसका स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग कर सकता है। आवश्यकता पड़ने पर उसकी बिक्री भी कर सकता है।
2. उत्तराधिकार— पूँजीवाद में सम्पत्ति का हस्तान्तरण वंश परम्परा के अनुसर होता है। किसी भी सम्पत्ति के स्वामी की मृत्यु हो जाने पर उसकी सम्पत्ति उसके पुत्रों को प्राप्त हो जाती है।
3. उपभोक्ताओं की प्रभुसत्ता— पूँजीवाद में उपभोक्ता की प्रभुसत्ता होती है। उपभोक्ताओं की पसन्द के अनुसार ही उत्पादन की मात्रा एवं प्रकार निश्चित होता है।
4. प्रतियोगिता— पूँजीवाद में स्वतंत्र प्रतियोगिता होती है।
5. लाभ का उद्देश्य—पूँजीवाद निजी लाभ पर आधारित होता है। पूँजीवाद में व्यक्ति लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से ही आर्थिक क्रियाओं का संचालन करता है।
6. पूँजी संचय— पूँजीवाद में पूँजी रखने का अधिकार होता है अतः लोग पूँजी का संचय करते हैं।

7. अनुसंधान को प्रोत्साहन— पूँजीवाद में व्यक्तिगत लाभ एवं पारस्परिक प्रतियोगिता के कारण नई—नई खोज एवं अनुसंधान होते रहते हैं। जिससे कम से कम लागत पर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।
8. मूल्य तन्त्र— पूँजीवाद में उपभोक्ता की रुचि एवं माँग के अनुसार उत्पादन किया जाता है। किन्तु उत्पादन और उपभोक्ता दोनों ही मूल्य पर निर्भर रहते हैं अतः मूल्य के द्वारा माँग की और पूर्ति का समायोजन होता है। पूँजीवाद में मूल्य एक निर्देशक यन्त्र के समान है जिसके द्वारा प्रत्येक आंशिक क्रिया संचालित होती है।
9. वर्ग संघर्ष—पूँजीवादी समाज दो भागों में विभाजित हो जाता है। अ. पूँजीपति वर्ग ब. निर्धन वर्ग। दोनों वर्गों के हित परस्पर विरोधी होने के कारण दोनों वर्गों में संघर्ष होने लगता है।
10. आर्थिक विषमता— पूँजीवाद में धन व आय के वितरण में असमानता पायी जाती है। पूँजीवाद में कुछ व्यक्ति धनी तथा अधिकांश व्यक्ति निर्धन होते हैं। इस व्यवस्था में निर्धनों का काफी शोषण होता है तथा समाज में आर्थिक विषमता उत्पन्न हो जाती है।

निष्कर्ष—

पूँजीवाद आर्थिक संगठन की वह प्रणाली है जिसमें प्राकृतिक तथा मानव निर्मित पूँजीगत साधनों का व्यक्तिगत स्वामित्व होता है तथा उसका प्रयोग निजी लाभ हेतु किया जाता है। पूँजीवाद में उत्पादन के साधनों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध व्यक्तियों के हाथ में होता है तथा उत्पादन निजी उद्यम के उपक्रम द्वारा तथा निजी लाभ हेतु किया जाता है।

NOTES

प्राचीन काल में सामाजिक चिन्तन का रूप बहुत उच्च स्तर था कमी केवल यह थी कि उस समय के विचारों में विशेषीकरण नहीं हुआ था। सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक विचारों का विवेचन एक साथ किया जाता था। उस समय धर्म का क्षेत्र काफी व्यापक था प्राचीन कालीन धर्म ग्रन्थों में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक अनेक प्रकार के विचार देखने को मिलते हैं। दर्शन का क्षेत्र काफी विस्तृत था जिसमें सभी प्रकार के विचार समाहित थे। प्राचीन सामाजिक विचारों का अध्ययन करने के लिए विभिन्न स्रोतों को आधार बनाया जाता हो।

महत्वपूर्ण परीक्षा उपयोगी प्रश्न

1. सामन्तवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए यूरोपीय सामन्तवादी व्यवस्था के लक्षण बताते हुए उनकी तुलना कीजिये?
2. पूँजीवाद क्या हो पूँजीवाद की प्रवृत्ति स्पष्ट कीजिये?
3. पूँजीवाद की परिभाषा दीजिये तथा पूँजीवाद की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये?
4. औद्योगिक क्रान्ति क्या है इसके प्रमुख लक्षण बताइये?
5. औद्योगिक क्रान्ति के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव बताइये?
6. औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पाद के नये तरीकों का समाज व अर्थ व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा?

कार्ल मार्क्स (1818–1883)

NOTES

वैज्ञानिक कम्युनिज्म के संस्थापक एवं समाजवाद के महान जन्मदाता श्री कार्ल मार्क्स (कार्ल हेनरी मार्क्स) एक प्रसिद्ध समाजशास्त्री अर्थशास्त्री तथा राजनीति विज्ञानी के रूप में सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित है। कार्ल मार्क्स का योगदान एक विचारधारा के रूप में आज भी संसार भर में अत्यन्त प्रतिष्ठित हो। कहा जाता है कि अरस्तु के बाद सामाजिक प्रघटनाओं का इतना विस्तार से विश्लेषण व निरूपण यदि किसी ने किया है तो वे कार्ल मार्क्स ही थे। संसार भर में श्रमिक और क्रान्तिकारी लोगों के मार्क्स अत्यन्त प्रिय नेता थे। इसीलिए मार्क्स के सर्वहारा के महान शिक्षक और नेता के रूप में जाना जाता है।

जीवन परिचय

कार्ल हेनरी मार्क्स का जन्म 5 मई 1818 को प्रशिया के “राइन” प्रान्त के ट्रियर नगर में एक यहूदी परिवार में हुआ था। कार्ल मार्क्स के पिता एक प्रसिद्ध वकील थे तथा उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वे अपने पुत्र को भी वकालत की शिक्षा दिलाएं। मार्क्स की शिक्षा 1830 से 1835 तक ट्रियर के एक रथानीय स्कूल ‘ट्रियर मिजने जियम’ में हुई। मार्क्स वाल्यावरथा से ही अत्त कुशाग्र बुद्धि के थे अपने स्कूली जीवन में लिखे एक लेख जिसे उन्होंने ‘पेशा चुनने के लिए सम्बन्ध में तरूण के विचार’ नाम से लिखा जिसमें उन्हें अत्यन्त ख्याति प्राप्ति हुई।

कानून की शिक्षा प्राप्त करने के लिए मार्क्स के पिता ने उन्हें बोन विश्वविद्यालय में प्रवेश दिलाया परन्तु मार्क्स यहां अधिक सफल नहीं हुये। सन् 1836 में वे पिता के विरुद्ध अभिलाषा के विरुद्ध बर्लिन विश्वविद्यालय इतिहास व दर्शन का अध्ययन करने लगे। यही

पर मार्क्स प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हुए और उन्होंने यंग

हीगेलियन नामक संस्था की सदस्यता ग्रहण की। 1841 में जेना विश्वविद्यालय से डेमाक्रिटस और एपिक्यूरम के दर्शन का भेद नामक शीर्षक पर मार्क्स की डाक्ट्रैट की उपाधि प्राप्त हुई 1842 में मार्क्स ने बोन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर न बनने पर राइनिश जाइट गु नामक पत्रिका के बो सम्पादक हो गये। अपने उग्र विचारों के कारण 1843 में मार्क्स को सम्पादक के पद से इस्तीफा देना पड़ा और वो जर्मनी छोड़कर पेरिस चले गये।

इसके पूर्व मार्क्स जब बोन विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे तथा उनका परिचय जेनी वॉन वेक्टफालेन नामक युवती से हुआ और मार्क्स ने आगे जाकर जेनी से विवाह कर लिया।

1844 में मार्क्स को बुनकरों के विद्रोह का समर्थन करने के कारण प्रशिया की सरकार ने फ्रांस की सरकार पर दबाव डाला और मार्क्स को फ्रांस से देश निकाल दे दिया। तब मार्क्स 1845 के प्रारम्भ में फ्रांस से बुसेल्स जाकर रहने लगे यही मार्क्स ने अपने मित्र ऐन्जिल के साथ मिलकर होली फेमली नामक एक पुस्तक प्रकाशित की।

1847 में जब कम्युनिष्ट लीग की दूसरी कांग्रेस की तैयारिया होने लगी तो मार्क्स और ऐन्जिल को कम्युनिष्ट पार्टी के कम्युनिष्ट घोषणा पत्र तैयार कने का काम सौंपा गया मार्क्स द्वारा लिखा गया यह घोषणा पत्र लन्दन में फरवरी 1848 में प्रकाशित हुआ।

1851 से 1862 तक मार्क्स ने अपना अधिकांश समय न्यूयार्क डेली ट्रिव्यून नामक पत्र में लगाया। 1867 में मार्क्स का विश्वविद्यालय ग्रन्थ दास के पिटल का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ दुर्भाग्यवश इस ग्रन्थ के दूसरे व तीसरे जिल्ड मार्क्स के जीवन काल में प्रकाशित न हो पाये और उन्हें बाद में ऐन्जिल्स ने क्रमशः 1885 और 1894 में प्रकाशित

किया। दास केपिटल मार्क्स की एक अनुपम रचना है जिसके बारे में स्वयं लेनिन ने लिखा है। यह ग्रन्थ हीवह मुख्य और बुनियादी रचना है जिसमें वैज्ञानिक समाजवाद की व्याख्या की गयी है। दुर्भाग्यवश मार्क्स को आजीवन निर्धनता का सामना करना पड़ा। 2 दिसम्बर 1881 को जेनी का निधन हो गया तो मार्क्स टूट गये। फेफड़ो की सूजन और पुरानी खासी की चिकित्सा के लिए वे अल्जीरिया और दक्षिणी फ्रांस भी गये लेकिन इससे उन्हें कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ। जनवरी 1883 में खांसी का प्रकोप बढ़ता गया और मार्क्स की हालत गिरती गये 14 मार्च 1883 को मार्क्स इस संसार से विदा हो गये। उनकी मृत्यु पर एन्जिल ने दुख प्रकट करते हुए लिखा है कि “साइबेरिया की खानों से कलीफोर्निया के तट पर विस्तीर्ण प्रदेश से श्रमिकों का श्रद्धास्पद प्रिय नेता मृत्यु को प्राप्त हो गया है।”

लन्दन के हाइगेट नामक कब्रिस्तान में शनिवार 17 मार्च 1883 को मार्क्स को दफनाया गया।

1. इकानोमिक एण्ड पालिटिकल मैनुस्क्रिप्ट	1843
2. द होली फेमिली	1846
3. द जर्मन आडियोलॉजी थीसिस आन फायरवाल	1846
4. द पावर्टी ऑफ फिलासफी	1847
5. कम्युनिष्ट मैनीफैस्टो	1847
6. द क्लास स्ट्रगल इन फान्स	1848
7. द एटीन्थ ब्रूमायर ऑफ लुइल बोनापार्ट	1850
8. ए कन्ट्रीब्यूशन टू द किटिक ऑफ पोलिकर इकोनामी	1852

मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त

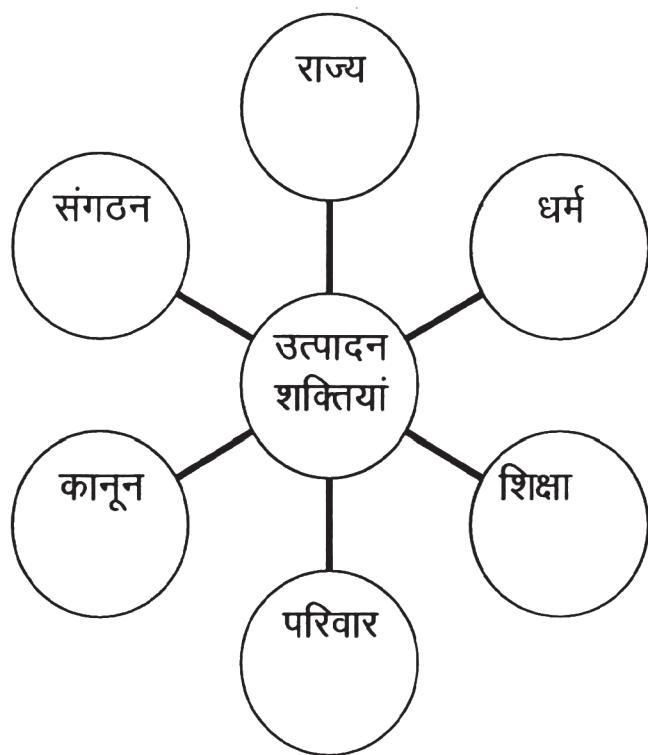
मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की भी व्याख्या की है।

मार्क्स सम्पूर्ण समाज को आर्थिक संरचना (अधोसंरचना) एवं अधिसंरचना में बांटना है। ये दोनों ही संरचनाएं एक दूसरे पर अन्योन्यश्रित हैं। आर्थिक संरचना के भीतर उत्पादन के साधन सम्पत्ति सम्बन्ध श्रम विभाजन का वर्ग आते हैं जिन्हें मार्क्स उत्पादन की शक्तियां कहते हैं। अधि संरचना में समाज की संस्थाएं राज्य धर्म, शिक्षा, परिवार कानून एवं नियम, राजनीति, सैनिक संगठन आदि आते हैं। मार्क्स के अनुसार उत्पादन के साधन बदलने पर धीरे धीरे सम्पूर्ण उत्पादन शक्तियों में परिवर्तन आता है और इस प्रकार पूरी आर्थिक संरचना परिवर्तित हो जाती हैं अधि संरचना चूंकि आर्थिक संरचना पर आधारित हैं अतः उनका बदलना भी अनिवार्य है और इस प्रकार दोनों संरचनाओं के बदलने पर पूरा समाज परिवर्तित हो जाता है। इसे ही मार्क्स सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

सा. परिवर्तन	राज्य	धर्म	शिक्षा	परिवार	कानून	अधि संरचना
	नियम	राजनीति	सैनिक	संगठन	अन्य	अधो संरचना
उत्पादन शक्तियां						

जब आर्थिक संरचना में परिवर्तन आता है तब सम्पूर्ण समाज परिवर्तित हो जाता है।

NOTES



मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

NOTES

द्वन्द्वाद का अंग्रेजी रूपान्तरण Dialectic यूनानी शब्द (डायलेगो) Diogeno से बना है। जिसका अर्थ है तर्क विर्तक करना। वाद विवाद करना अथवा सामान्य अर्थों में वाद विवाद करना।

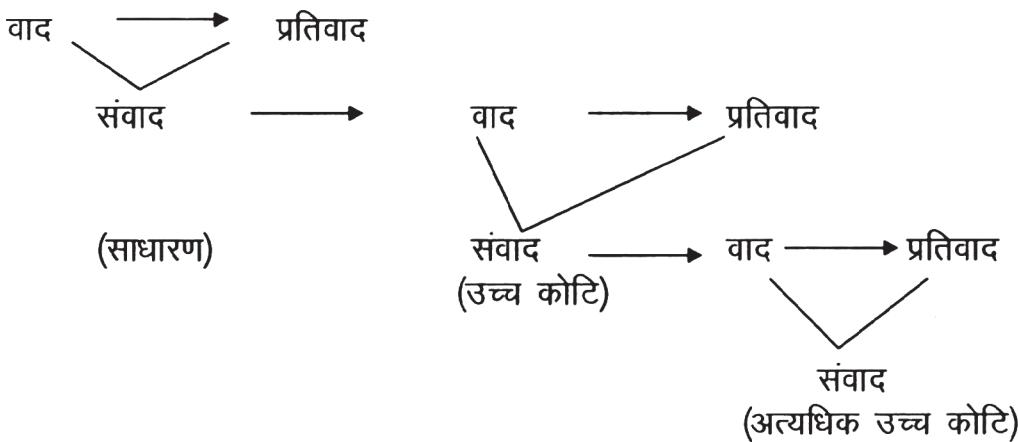
हीगल ने इस द्वन्द्वाद पद्धति का बहुत अधिक एवं विस्तार से प्रयोग किया हो हीगल ने अपने द्वन्द्वाद को समझने के लिए फिक्टे की प्रणाली को ग्रहण किया। जहां उन्होंने तर्क की प्रक्रियाओं में तीन अवस्थाओं का उल्लेख किया है। स्वयं हीगल कहते हैं कि संसार में प्रत्येक वस्तु की प्रतिवादी वस्तु अवश्य होती है। पहले वाद होता है और तब उसका प्रतिवादन इन दोनों के संघर्ष से एक तीसरी वस्तु उत्पन्न होती है। जिसे संवाद कहते हैं इस संवाद में वाद और प्रतिवाद दोनों की विशेषताओं का समावेश होता है। समावेश होने के साथ यह दोनों से अधिक उत्तम भी है। क्योंकि प्रगति के दौरान थोड़े समय के बाद वह पुनः स्वयं वाद का रूप धारण कर लेता है और फिर उसका एक प्रतिवाद जन्म लेता है और एक प्रतिवाद जन्म लेता है और फिर इन दोनों का संघर्ष प्रारम्भ होता है। इन संघर्ष के फलस्वरूप एक दूसरा संवाद उत्पन्न होता ही इन संघर्ष के फलस्वरूप एक दूसरा संवाद उत्पन्न होता है जो पहले वाले संवाद से अधिक उच्चकोटि का होता है।

जैसे हम साधारण पानी को वाद कहे तो जब उसका उबालते हैं तो प्रतिवाद होता है अर्थात् संघर्ष होता है यही प्रक्रिया फिर शुरू होती है क्योंकि उबला हुआ शुद्ध पानी थोड़े समय के बाद फिर दूषित हो जाता है जिसे दुबारा फिर उबालना पड़ता है और इसके बाद वाला पानी पहले वाले पानी की अपेक्षा अधिक शुद्ध होता है।

इसे हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं।

Thesis → Sin Theses → Anti Thesis
 थीसिस → सिन थिसिस → एन्टी थिसिस

NOTES



हीगल की यह द्वन्द्वात्मक प्रणाली तात्त्विक विचाराधारा की तुलना में थोड़ी निःसन्देह प्रगतिशील थी लेकिन फिर ये उनकी द्वन्द्वात्मक प्रणाली आदर्शवादी या भाववादी हो। हीगल का मानना था कि प्रकृति और समाज का विकास निरपेक्ष विचार से भी साबित होता है। हीगल ने प्रत्येक चीज को उलट-पलट दिया है और यथार्थ विचार के स्थान पर विचार के आत्म-विकास को और वस्तुओं के स्थान पर विचार के द्वन्दवाद को रखा है।

मार्क्स ने इन्हीं विचारों से अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की स्थापना की। उनका द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मूलतः हीगल के कुछ विचारों पर आश्रित अवश्य ही यह इस अर्थ में कि मार्क्स ने हीगल के द्वन्द्वात्मक विकासवाद को तो मान्यता दी है। परन्तु उसके आधार

पर या कारण को अर्थात् 'आत्मा' निरपेक्ष विचार आदि के सिद्धान्त को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया है।

NOTES

मार्क्स कहते हैं कि हीगल ने द्वन्दवाद को उल्टा (सर के बल) पैर ऊपर और सर नीचे करके खड़ा किया ही मैंने (मार्क्स) उसको सीधे पैरों के बल धरती पर खड़ा कर दिया है। मार्क्स कहते हैं कि पहले पदार्थ है बाद में विचार। क्योंकि इंसान को जीने के लिए खाना चाहिये छोटा ही उसकी मूलभूत आवश्यकतायें होती हैं। (रोटी, कपड़ा और मकान)। फिर विचार पनपते हैं।

एक जन्मजात शिशु को सर्वप्रथम आहार की जरूरत होती तब जाकर उसका जीवन सम्भव हो पाता है। इसलिए पहले पदार्थ की महत्व देते हैं। मार्क्स फिर विचार। जबकि हीगल का मानना है कि इस संसार से परे भी एक अलग दुनिया है जिसे आत्मा की दुनियाँ कहते हैं। उन्होंने अपने द्वन्दवाद में विचार की प्राथमिकता दी है।

मार्क्स का कथन है कि इस वैषयिक व भौतिक दुनियाँ की हीगल ने अवहेलना की है जिसमें वे खुद रहते हैं जिसके फलस्वरूप उनके मस्तिष्क के साथ उनका आस्तित्व बना है तथा उनके लिए दार्शनिक विचार व्यक्त करना सम्भव हुआ है।

अतः स्पष्ट है कि मार्क्स के द्वन्दात्मक सिद्धान्त का आधार भौतिकवादी है अपने भौतिकवाद की चर्चा करते हुए मार्क्स तथा एंजेल्स ने दार्शनिक फायरवाख के नाम का प्रायः उल्लेख किया है। मार्क्स ने फायरवाख को यह श्रेय तो दिया कि हीगल की आलोचना करने वाले वही सबसे पहले भौतिकवादी दार्शनिक थे। लेकिन उन्होंने फायरवाख के भौतिकवाद की सीमाओं और असंगतियों को भी बताया। मार्क्स ने कहा कि मेरा

उद्देश्य एक ऐसे सुसम्बद्ध और सुसंगत भौतिकवादी विश्वदर्शन की रचना करना था जो सामाजिक जीवन और प्रकृति दोनों पर लागू हो सके।

मार्क्स ने स्वयं अपनी पुस्तक 'दास कैपिटल' के प्रथम खण्ड में लिखा है कि 'मेरी द्वन्द्वात्मक प्रणाली हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली से न केवल भिन्न है वरन् उससे बिल्कुल भिन्न (विपरीत) ही हीगल के लिए चिन्तन की प्रक्रिया विचार है जो वास्तविक जगत का सृजन करता है। विचार का बाह्य रूप ही इसके ठीक विपरीत मेरे लिए (मार्क्स) आदर्श मानव के मस्तिष्क द्वारा प्रतिविम्बित और विचार के रूप में परिवर्तित भौतिक जगत के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।'

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या—

मार्क्स का एक अन्य महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय योगदान ऐतिहासिक भौतिकवाद है। मार्क्स के इस निवृत्त के ऊपर सेण्ट साइमन का प्रभाव देखा जा सकता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद में मार्क्स समाज के विकास एवं परिवर्तन का इतिहास तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं। उत्पादन के सम्बन्ध में मार्क्स के अनुसार समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करते हैं। समाज की आदर्श संरचना, जिसमें न्याय एवं राजनीतिक संरचना सम्मिलित हो का आधार आर्थिक संरचना है। आर्थिक संरचना में परिवर्तन से आदर्श संरचना परिवर्तित होती है। श्रम के विभाजन के विभिन्न स्तरों का आधार सम्पत्ति के विभिन्न प्रकार है। सम्पत्ति का पहला प्रकार जनजातीय सम्पत्ति है। दूसरा प्रकार सामुदायिक सम्पत्ति तृतीय प्रकार सामन्तवादी सम्पत्ति एवं चतुर्थ प्रकार आधुनिक पूँजीवादी सम्पत्ति है। इतिहास क्रम में समाज का यह विकास साम्यवाद को अन्तिम स्तर के रूप में घोषित करता है। इस प्रकार मार्क्स समाज के इतिहास को वर्ग संघर्ष का इतिहास घोषित

NOTES

करते हैं। क्योंकि परिवर्तन की यह प्रक्रिया संघर्ष का ही परिणाम है। पूँजीवादी समाज के शोषण की तीव्रता के कारण मार्क्स दुनिया के समस्त मजदूरों में चेतना जाग्रत करने का सन्देश देते हुए उनमें एकता का आहवान् करते हैं ताकि शोषण तथा पूँजीवादी ताकतों कके अमानवीय कार्य समाप्त हो सके। उन्होंने आहवान किया कि दुनिया के मजदूरों एक हो जाओ तुम्हारे पास खोने के लिए अपनी दासता की जंजीरों के सिवा कुछ भी नहीं है और जीतने के लिए सम्पूर्ण विश्व है।

मार्क्स के शब्दों में उत्पादन में मनुष्य केवल प्रकृति के प्रति ही नहीं बल्कि एक दूसरे के प्रति भी क्रियाशील होता है। किसी न किसी तरह से सहयोग करते हुए तथा अपने कार्यों के आपस में आदान—प्रदान द्वारा ही वे उत्पादन करते हैं। उत्पादन करने के लिए उन्हें परस्पर मिलना तथा एक दूसरे से निश्चित सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है और केवल इन्हीं सामाजिक मिलन तथा सम्बन्धों के अन्तर्गत ही उत्पादन कार्य सम्पादित होता है।

उत्पादन प्रणाली की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि यह अधिक समय तक एक स्थिति पर स्थिर नहीं रहती है। इसमें सदैव परिवर्तन व विकास होता रहता है। उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होने से सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था विचारों, राजनीतिक मतों और राजनीतिक संस्थाओं में परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। विकास के विभिन्न स्तर पर मनुष्य अलग—अलग उत्पादन प्रणाली को अपनाता है।

इसका तात्पर्य यह है कि समाज के विकास का इतिहास वास्तव में उत्पादन प्रणाली के विकास का इतिहास अर्थात् उत्पादन शक्ति और मनुष्यों के उत्पादन सम्बन्ध के विकास का ही इतिहास है जो कि भौतिक मूल्यों का उत्पादन करते हैं। दूसरे शब्दों में

सामाजिक विकास का इतिहास उस मेहनत कर जनता का इतिहास है। जो कि उत्पादन की प्रक्रिया में प्रमुख शक्ति है और समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक भौतिक मूल्यों का उत्पादन करती है।

NOTES

अतः समाज के इतिहास के नियमों के अध्ययन का सूत्र हमें मनुष्यों के मस्तिष्क में या समाज के विचारों और दृष्टिकोण में ही नहीं बल्कि एक विशेष ऐतिहासिक युग में अपनायी जाने वाली उत्पादन प्रणाली में अर्थात् समाज के आर्थिक जीवन में खोजना चाहिये। इसलिये विज्ञान का सर्वप्रथम कार्य उत्पादन के नियमों को उत्पादन शक्ति तथा उत्पादन सम्बन्धी के विकास के नियमों को समाज के आर्थिक विकास को प्रकट करना है।

विभिन्न युगों में मानव समाज के रूपान्तरण की व्याख्यात्मक विवेचना—

मार्क्स के अनुसार उत्पादन प्रणाली के प्रत्येक परिवर्तन के साथ लोगों के आर्थिक सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था आदि में भी परिवर्तन हो जाता है। इस दृष्टि से मानव इतिहास को पाँच युगों में बाँटा जा सकता है। ये पाँच युग इस प्रकार हैं—

1. आदिम साम्यवादी युग 2. दासत्व युग 3. सामन्तवादी युग 4. पूँजीवादी युग 5. समाजवादी या साम्यवादी

1. आदिम साम्यवादी युग इतिहास का प्रारम्भिक युग है। इस युग में उत्पादन के साधन किसी व्यक्ति विशेष के नहीं बल्कि पूरे समुदाय के होते थे। संयुक्त श्रम के कारण ही उत्पादन के साधन पर तथा उनसे मिलने वाली वस्तुओं पर धारणा का अभाव था इसलिए वर्ग प्रथा न थी और न ही किसी प्रकार का शोषण।

2. इसके बाद दासत्व युग का अविर्भाव हुआ। दास व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर दास के मालिकों का अधिकार होता था। इन दासों को उनके मालिक

पशुओं की तरह खरीद और बेंच सकते थे। इस प्रकार समाज दो वर्गों दास और मालिक में बट गया।

NOTES

3. तीसरा युग सामन्तवादी युग था इस युग में उत्पादन के साधनों पर सामन्तों का अविष्कार होता था वे सामन्त उत्पादन के साधनों विशेषतः भूमि के स्वामी होते थे। गरीब अर्द्धदास किसान इन सामन्तों के अधीन थे।
4. आधुनिक पूँजीवादी युग में मशीनों का अविष्कार तथा बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों के जन्म के फलस्वरूप हुआ। इस युग में साधनों पर पूँजीपतियों का अधिकार होता है। इस प्रकार सर्वहारा के अधिनायकत्व की स्थापना होगी और फिर साम्यवादी युग के आगमन पथ प्रशस्त होगा।
5. मार्क्स ने ऐसी कल्पना की थी कि पाँचवा युग आधुनिकतम् युग होगा। समाजवादी या साम्यवादी युग होगा और यह तभी सम्भव होगा। जबकि पूँजीवादी व्यवस्था को खूनी क्रान्ति के द्वारा श्रमिक वर्ग उखाड़ फेकेगा और शासकीय शक्ति पर अधिकार जमा लेगा।

आर्थिक निश्चयवाद—

उत्पादन के प्रकार और सामाजिक संरचना मार्क्स की कृतियों में सामाजिक संरचना के सम्बन्ध में सम्पूर्ण सामाजिक संरचना को दो मोटे भागों में विभाजित करके उनके बारे में विश्लेषण किया हो। उन्होंने समाज के सम्पूर्ण ढांचे के ऊपरी भाग को अधिसंरचना कहा हो जबकि बुनियादी भाग या निचले भाग को 'अधो संरचना' की संज्ञा दी है। इन दोनों के सम्मिलित रूप से ही समाज की सम्पूर्ण संरचना का निर्माण होता है।

मार्क्स के अनुसार सामाजिक संरचना मनुष्य के सामाजिक जीवन या अस्तित्व को ही अभिव्यक्ति है और मनुष्य के सामाजिक आस्तित्व की बुनियादी बात यह है कि उनकी उन भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे जिसके कारण उनका जीवित रहना सम्भव होता है। मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएँ जैसे— रोटी, कपड़ा और मकान के लिए तो मनुष्य को स्वयं ही परिश्रम करना पड़ेगा। परन्तु केवल मनुष्य से ही काम नहीं चलेगा अगर इन भौतिक वस्तुओं के उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन के साधन उपलब्ध न हो। उत्पादन—अनुभव व श्रम—कौशल का ज्ञान न हो जो एक समाज विशेष की उत्पादन शक्ति का निर्माण करते हैं किसी समाज विशेष की उत्पादन शक्ति के तीन तत्व या अंग होते हैं। मनुष्य उत्पादन के उपकरण तथा उत्पादन अनुभव व श्रम कौशल।

मार्क्स के अनुसार उत्पादन—शक्ति और उत्पादन सम्बन्धों के सम्पूर्ण योग से समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण होता है। इसी को अधोसंरचना कहा गया है क्योंकि यही वास्तविक नींव है। जिस पर कि समाज की अधिसंरचना खड़ी होती है। अधिसंरचना के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के अन्य पक्ष जैसे सामाजिक, राजनीतिक, बौद्धिक, वैधानिक, सांस्कृतिक आते हैं। मार्क्स के मतानुसार अधोसंरचना के अनुरूप ही अधिसंरचना की प्रकृति निश्चित होती है।

मार्क्स का विश्लेषण या सामाजिक परिवर्तन

यद्यपि मार्क्स ने सामाजिक व्यवस्था और उसमें होने वाले परिवर्तनों का आधार उत्पादन प्रणाली को ही माना है। फिर भी अपने लेखों तथा पत्र—व्यवहारों में उन्होंने इस बात को भी स्पष्ट किया हो कि उनके सिद्धान्त का अर्थ नहीं है कि आर्थिक या नैतिक कारकों के अतिरिक्त अन्य सभी कारकों को पूर्णतया गौण या व्यर्थ माना जाये। ऐजेल्स के

शब्दों में राजनीतिक, वैधानिक, दार्शनिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक विकास आदि आर्थिक विकास पर ही आधारित हो। परन्तु ये सभी एक दूसरे को और आर्थिक आधार को भी प्रभावित करते रहते हैं। ऐसा नहीं है कि आर्थिक प्रभाव एकमात्र कारण है और वह ही सक्रिय हो जबकि दूसरे और सभी प्रभाव निष्क्रिय हैं। वास्तव में आर्थिक आवश्यकता जो कि अन्त में सदैव अपने महत्व को प्रमाणित करती है। वे आधार पर विभिन्न कारकों में अन्तक्रिया होती रहती हैं। अधिक स्पष्ट रूप से ऐजेल्स ने और भी लिखा है। इतिहास की भौतिकवादी धारणा के अनुसार वास्तविक जीवन में उत्पादन और पुनः उत्पादन ही अन्तिम रूप से (न कि एकमात्र) निर्णायक तत्व है। भौतिक प्रभाव को इससे अधिक महत्व मार्क्स ने और न ही मैंनी प्रदान किया है। यदि कोई हमारे कथनों को तोड़—मोड़ कर इस भाँति प्रस्तुत करे कि मार्क्स के अनुसार आर्थिक प्रभाव ही एकमात्र निर्णायक कारक होती। ऐसा करके यह भौतिकवादी व्याख्या को अर्थहीन और हास्यस्पद बना देता है।

पूँजीवाद के विकास तथा उद्विकास पर मार्क्स का विश्लेषण—

मार्क्स ने अपनी पुस्तक दास कैपिटल में उत्पादन की पूँजीवादी व्यवस्था की विवेचना की है। मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद का आधार पूँजी है। पूँजी के विभिन्न स्वरूप उत्पादन की सामग्री मशीन तथा तैयार माल का भण्डार है। पूँजी की प्रमुख विशेषता यह है कि पूँजी के द्वारा बाजार में श्रम खरीदा जा सकता है। जिसके पास पूँजी है। यह विभिन्न माध्यमों से अधिक पूँजी कमा सकता है। पूँजीवाद का बुनियादी सिद्धान्त मुनाफाखोरी है।

पूँजीवाद के लक्षण मेहनाद देसाई के अनुसार—

1. बाजार

2. उत्पादन पर पूँजीवादियों का नियन्त्रण

3. पूँजीपति के पास स्वामित्व

4. वित्तीय निर्णय पर नियंत्रण

5. मुद्रा विनिमय

NOTES

मार्क्स के पूँजीवाद के विश्लेषण का माध्यम उत्पादन शक्तियों एवं उत्पादन सम्बन्धों को माना है। उनका तर्क है कि जब उत्पादन शक्तियाँ बढ़ती हैं तो पूँजीवाद का विस्तार होता है। लेकिन इस विस्तार से उत्पादन सम्बन्ध उत्पादन शक्तियों में बहुत दूर से जाते जिसके परिणाम स्वरूप द्वन्द्व होता है। मार्क्स का मत है कि जैसे—जैसे पूँजीवाद बढ़ेगा और एक ऐसी स्थिति आयेगी जब क्रान्ति होगी।

पूँजीवादी समाज का मार्क्सवादी आलोचना

मार्क्सवादी सम्पूर्ण विचारधारा पूँजीवाद के विरुद्ध है। पूँजीवाद समाज मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण करने वाला समाज है। धनी को अधिक धनी और गरीब को अधिक गरीब बनाने वाला समाज है। आर्थिक जीवन की नीव श्रमिक वर्ग को उत्पीड़ित करती है। उनका शोषण करती है और ऐसा करते हुए पूँजीवाद स्वयं अपनी ही कब्र खोदता है।

पूँजीवादी समाज का उद्भव सामन्तवादी समाज के अन्त होने पर होता है और उसका कारण उत्पादन के साधनों में परिवर्तन होता है। चूँकि समाज या सामाजिक व्यवस्था पूँजी की शक्ति पर आधारित होती है। इसलिए ऐसा समाज पूँजीवादी समाज कहलाता है।

पूँजीवादी समाज के उद्भव के साथ—साथ समाज में दो विराट वर्गों में स्वतः ही बढ़ जाते हैं। प्रथम वर्ग अल्पसंख्यक उन लोगों का होता है जिनका इन उत्पादन के

साधनों पर अधिकार होता है। अर्थात् पूँजीपति वर्ग। दूसरा वर्ग समाज के बहुसंख्यक श्रमिक लोगों का होता है। जिनके पास पूँजी या जीविका पालन के अन्य कोई साधन नहीं होते हैं। उनके जीवित रहने के लिए एक ही मार्ग खुला होता है और वह यह कि वे अपने श्रम को पूँजीपति वर्ग द्वारा स्थापित और उसके बदले में वेतन उपार्जन करके अपने को तथा अपने परिवार के अन्य आश्रितों को जीवित रखें। यह वेतन कितना होगा इसका निर्धारण श्रमिक नहीं अपितु पूँजीपति करता है।

उपरोक्त परिस्थिति का परिणाम यह होता है कि धनवान अधिक धनी बन जाते हैं और उनकी संख्या घटती जाती है। निर्धन और अधिक निर्धन होते जाते हैं और उनकी संख्या बढ़ती जाती है।

अतः स्पष्ट है कि पूँजीवादी व्यवस्था में ऐसे कई आन्तरिक विरोध क्रियाशील होते हैं जिनके कारण पूँजीपतियों के विरुद्ध श्रमिकों की क्रान्ति और उनके फलस्वरूप पूँजीवाद का विनाश अवश्यम्भावी है। इस प्रकार पूँजीवाद समाज की ऐतिहासिक यात्रा छोटे पैमाने के संगठन से प्रारम्भ होकर बड़े संगठन पर पहुँचकर समाप्त होती है।

अतिरिक्त मूल्य एवं शोषण की अवधारणा

मार्क्स के समस्त दर्शन की पृष्ठभूमि में एक वर्ग के द्वारा आर्थिक सम्पन्नता पर एकाधिकार करके दूसरे वर्ग का शोषण उत्पीड़न किया जाता है। पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था में पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण करने की वास्तविक शक्ति का रहस्य वास्तव में अतिरिक्त मूल्य है जिसे मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य को ही आधुनिक पूँजीवाद के विकास का प्रमुख स्रोत माना है।

मार्क्स का यह अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त श्रम के मूल्य के सिद्धान्त पर आधारित है। लेनिन के अनुसार मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त उसके आर्थिक सिद्धान्त एवं पूँजीवाद के वृद्धि की आधारशिला है। पूँजीवाद में उत्पादन सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वरन् व्यक्तिगत लाभ के लिए किया जाता है। अतिरिक्त मूल्य वह मूल्य है जो श्रमिक द्वारा उत्पादित माल को वास्तविक कीमत और उस वस्तु की बाजार कीमत में अन्तर होता है। पूँजीपति यह अन्तर श्रमिकों से छीन कर संवयं हड्डप लेता है और उनका शोषण करता है जबकि न्याय की दृष्टि से अतिरिक्त मूल्य में भी श्रमिकों का हिस्सा होना चाहिये।

मार्क्स के अनुसार श्रम से उत्पन्न हुए मूल्य तथा उस श्रम के बदले श्रमिक को मिलने वाले मूल्य का अन्तर ही अतिरिक्त मूल्य है। औद्योगिक प्रक्रिया में अधिकांशतः ऐसा पाया जाता है कि श्रमिक अपने परिश्रम से जितना मूल्य उत्पन्न कर ले परन्तु पूँजीपति उसे उसके श्रम के बदले में उतनी मजदूरी न देकर उसे कम देता है।

पूँजीवादी व्यवस्था का आधार यह है कि ऐसी वस्तुओं का उत्पादन न किया जाये जिसका बाजार मूल्य अधिक हो बाजार मूल्य और लागत के अन्तर को लाभ कहा जाता है। पूँजीवाद के लाभ के लिए उत्पादन किया जाता है।

लाभ किसी वस्तु के उत्पादन मूल्य और विनिमय मूल्य के अन्तर को कहा जाता है। वस्तु के उत्पादन मूल्य में जितना अधिक उसका विनिमय मूल्य होगा उतना ही पूँजीपति को लाभ होगा। इसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे— मान लीजिये किसी वस्तु की उत्पादन लागत 40 रु0 और विनिमय 60रु0 तो लाभ $60-40= 20$ यह 20रु0 ही

अतिरिक्त मूल्य है। जिसमें श्रमिक का भी हिस्सा होना चाहिये। इसे मार्क्स ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है।

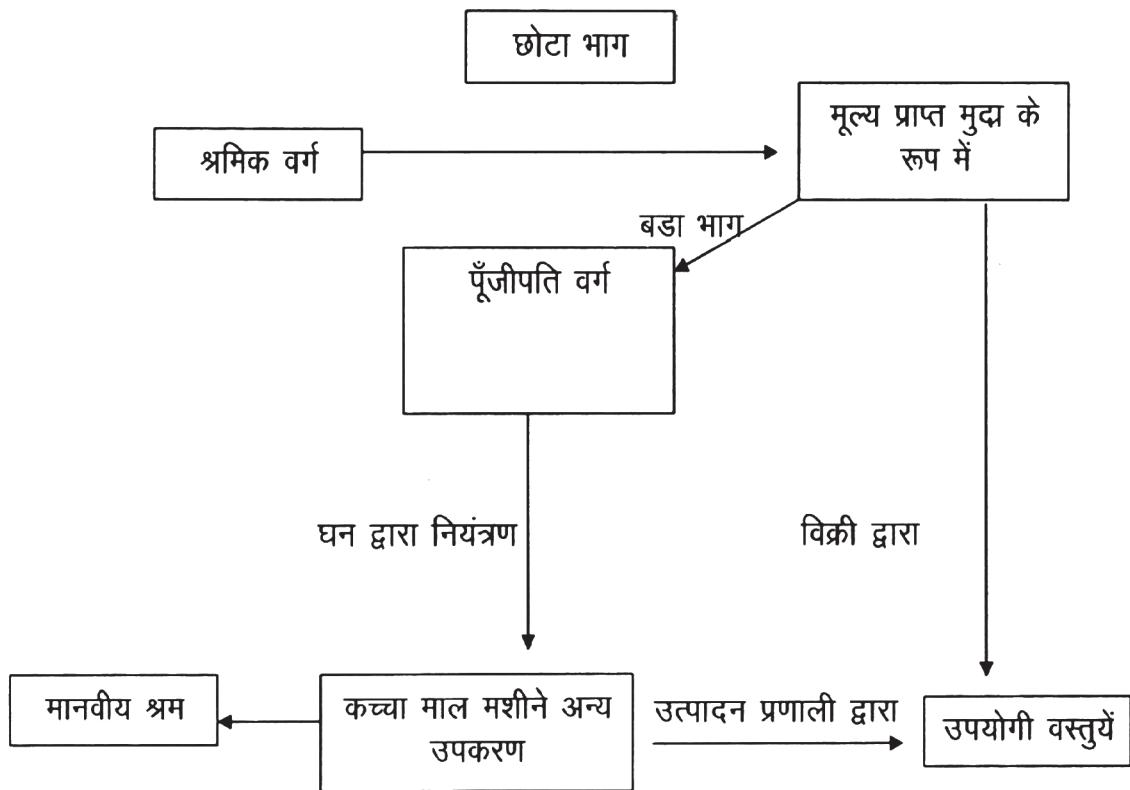
NOTES

1. एक श्रमिक छः घण्टे में 12 रु0 के मूल्य का उत्पादन करता है तो पहले 6रु0 में विनिमय मूल्य है और दूसरे 6रु0 अतिरिक्त मूल्य हैं। ?
2. लेकिन पूँजीपति 6 घंटे से भी अतिरिक्त समय 8 या 10 घंटे कार्य लेता रहता है। इस प्रकार शेष 2 या 4 घंटे अतिरिक्त समय है। इस अतिरिक्त समय में श्रमिक अतिरिक्त उत्पादन करता है। इस अतिरिक्त उत्पादन से अतिरिक्त लाभ मिलता है।
3. इसी प्रकार मार्क्स इस बात से सहमत है कि दुनियाँ की दो वस्तुओं का समान वितरण नहीं हो सकता। बुद्धि और शक्ति। बहुत से श्रमिक अपनी बुद्धि और शक्ति से 6 घंटे में उत्पादित होने वाली वस्तुओं को दो या चार घंटे में ही उत्पादित कर देते हैं। लेकिन श्रमिक की छुट्टी न करके पूँजीपति पूरे समय तक कार्य करवाता रहता है। इस शेष अवधि में भी अतिरिक्त उत्पादन होता रहता है और अतिरिक्त लाभ अतिरिक्त मूल्य के रूप में पूँजीपति के रूप में प्राप्त होता रहता है।

उपरोक्त व्याख्या का निष्कर्ष यह है कि अतिरिक्त मूल्य तथा मजदूरी का अनुपात ही शोषण की दर है। अतिरिक्त मूल्य ही वास्तव में पूँजीपति का लाभ है और पूँजीपति की वास्तविक शक्ति भी। यह पूँजीवाद की वृद्धि का प्रमुख स्रोत है। इस अतिरिक्त मूल्य का परिणाम यह होता है कि स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने लिखा है कि अतिरिक्त मूल्य व्यवस्था में अमीर निरन्तर अमीर होता जाता है। लेकिन उनकी संख्या कम होती जाती है और गरीब निरन्तर गरीब होता जाता है। लेकिन उनकी संख्या अधिक होती जाती है।

हम यह चित्र के द्वारा मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को इस प्रकार समझ सकते हैं।

NOTES



वर्ग और वर्ग संघर्ष का उद्भव

NOTES

कार्ल मार्क्स ने वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त अपनी पुस्तक (दी मैनीफैस्टी ऑफ दी कम्युनिष्ट) में प्रतिपादित किया है। मार्क्स ने हीगल के आदर्शात्मक द्वन्दवाद का खण्डन करके द्वन्दात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। मार्क्स ने लिखा है हीगल ने द्वन्दवाद को रहस्यात्मक बना दिया है। हीगल ने द्वन्दवाद को सिर के बाल खड़ा किया है। मैंने (मार्क्स) ने उसे पैरों के बल सीधा खड़ा कर दिया है। मार्क्स के इस कथन का आशय पदार्थों से होता है। अर्थात् पदार्थ प्राथमिक हो और विचार हृतीयक। द्वन्दात्मक भौतिकवाद के आधार पर समस्त मानव इतिहास की मार्क्स ने भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत की है। जिसे ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से जाना जाता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद की उत्पादन प्रणाली उत्पादन शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों में विभक्त रहती है और यही उत्पादन शक्तियाँ और उत्पादन सम्बन्ध दो प्रकार के वर्गों को जन्म देती है। उत्पादन शक्तियों से उत्पन्न होने वाला वर्ग उत्पादन के समान साधनों पर आधिपत्य कर लेता है। जबकि उत्पादन सम्बन्धों से निर्मित होने वाला वर्ग वास्तव में उत्पादन करने वाला वर्ग होता है।

मार्क्स ने उत्पादन शक्तियों से उत्पन्न वर्ग को बुर्जुवा और उत्पादन सम्बन्धों से उत्पन्न वर्ग को सर्वहारा वर्ग कहा है। मार्क्स कहता है कि दोनों वर्गों के हित विरोधी होते हैं जिसके कारण उत्पादन प्रणाली में अन्तः विरोधाभाष उत्पन्न होता है। इस अन्तः विरोधाभाष से ही संघर्ष उत्पन्न होता है।

मार्क्स की वर्ग की अवधारणा

वर्ग और वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त मार्क्स की नवीन देन नहीं है। आदिकाल से ही विद्वान् वर्ग भेद तथा वर्ग विशेष को महत्वपूर्ण स्वीकार करते हैं। लेकिन मार्क्स ने वर्गों के निर्माण की आर्थिक व्याख्या करके वर्ग संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन का कारण घोषित किया। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या एवं आर्थिक निर्णयवाद के सिद्धान्त की व्याख्या करके मार्क्स ने समाज के इतिहास को वर्ग संघर्ष के रूप में देखा है। मार्क्स ने अपनी कृति (कम्युनिष्ट मैनीफैस्टो) की प्रथम पंक्तियों में ही लिखा है कि “आज तक के आस्तित्व में आये समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। इसी पुस्तक के दूसरे स्थान में लिखा है कि “आज तक प्रत्येक समाज शोषक एवं शोषित वर्गों के विरोध पर आधारित रहे हैं।

मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त मुख्यतः इन्हीं कथनों पर आधारित है। मार्क्स के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति से ही विश्व में किसी न किसी रूप में मानवीय एवं सामाजिक विभेदीकरण एवं संस्तरण विद्वमान रहा है।

मनुष्य ने अपनी विशिष्ट समानताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न समूहों में विभाजित हो जाते हैं। ये समूह शारीरिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं अन्य सामान्य लक्षणों के आधार पर बन जाते हैं। मार्क्स ने मानव समाज में इसी वर्ग विभेदीकरण को अपनी सामाजिक विवेचना का आधार माना है। मार्क्स का वर्ग शब्द से आशय आर्थिक विभेद अर्थात् आर्थिक वर्ग से है। उनके अनुसार वर्गों का निर्माण असमान आर्थिक विभाजन के कारण हुआ है। वे शारीरिक, बौद्धिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जाति और सम्प्रदाय सबको वर्ग के निर्धारण का आधार नहीं मानता हैं उसके वर्ग आर्थिक वर्ग है। जो उत्पादन प्रणाली में जन्म लेते हैं। जो आर्थिक दृष्टि से असमान एवं भिन्न होते हैं। प्रथम वर्ग बुर्जुवा वर्ग है और द्वितीय

सर्वहारा वर्ग है। आर्थिक आधुनिक पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था में बुर्जुवा ने ही पूँजीपति वर्ग

और सर्वहारा को श्रमिक वर्ग कहा है।

NOTES

पूँजीपति वर्ग की शक्ति भूमि धन एवं पूँजी होती है तथा आय के स्रोत लगान एवं लाभ होता है। जबकि धार्मिक वर्ग की शक्ति श्रम होती है तथा आय के स्रोत वेतन या मजदूरी होती है। अतः एक वर्ग स्वामी और दूसरा नौकर है। पूँजीपति वर्ग वह होता है जो उत्पादन के समस्त साधनों का स्वामी होता है। आर्थिक दृष्टि से धनी सामाजिक दृष्टि से शासक होता है। श्रमिक वर्ग जो श्रम एवं मजदूरी करता है तथा मालिक की कृपा के सहारे वेतन व मजदूरी करके जीवित रहता है। वे आर्थिक दृष्टि से निर्धन व गरीब सामाजिक दृष्टि से निम्न कोटि एवं शोषित और राजनैतिक दृष्टि से शक्ति अर्थात् प्रजा होता है।

सर्वहारा क्रान्ति और पूँजीवाद का भविष्य एवं वर्गहीन समाज तथा राज्य का भविष्य

मार्क्स का मत है सर्वहारा क्रान्ति के बाद भविष्य में राज्य नहीं होगा एक वर्ग विहीन एवं राज्य विहीन समाज की स्थापना होगी। राज्य को समाप्त करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। वह अपने आप ही समाप्त हो जायेगा। राज्य का समाप्त होना स्वाभाविक होगा क्योंकि जब समाज में दो वर्ग ही नहीं रहेंगे तो उसका कार्य नहीं होगा। इस व्यवस्था में उत्पादन का लक्ष्य व्यक्ति विशेष को लाभ न होकर सामूहिक उपभोग होगा ऐसी व्यवस्था में समाज का शोषक वर्ग समाप्त हो जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति श्रमिक होगा और वह अपनी योग्यतानुसार कार्य करेगा। उत्पादन पर स्वामित्व सम्पूर्ण समाज का होगा। इसलिए उत्पादन सभी व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से किया जायेगा। मार्क्स का मत है कि इस प्रकार से जो राज्य कायम होगा उसमें हिंसा नहीं होगी तथा

उच्च सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण होगा। मनुष्य भौतिक जगत के कष्टों से मुक्त होकर जीवन की वास्तविक आनन्द का उपभोग करेगा। इस प्रकार राज्य समाज में अपनी प्रकृति के अनुरूप सच्चे मानवीय तरीकों से सम्पूर्ण विश्व को संगठित करेगा। मार्क्स राज्य शासन की सत्ता को समाजवाद का विरोधी मानता था। अतः वह शासन की सत्तायें समाप्त करके वर्गविहीन समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहता था।

पूँजीवादी समाज में अलगाव

मानव इतिहास के विकास के दौरान समाज सरल से जटिल की ओर तेजी से बढ़ता जा रहा है। जटिल से और जटिल हो रहा है। इस विस्तार विकास और जटिलता के अपने कुछ परिश्रम है। उन परिणामों को भी आज हमें भोगना पड़ रहा है। पारकीय करण या पृथक्करण उन्हीं परिणामों में से एक है। औद्योगीकरण में पहले समाज छोटा और सरल होता था और समाज के सभी सदस्य, नातेदारी व्यवस्था अथवा कर्तव्य-बोध के आधार पर एक दूसरे के साथ एक सूत्र में बंधे हुए होते थे। इसलिए व्यक्ति को वे ही कार्य करने पड़ते थे जो सामूहिक दृष्टि से हितकर हो। परन्तु औद्योगीकरण के साथ-साथ ये सभी सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तेजी से बदल गई। व्यक्ति को सामाजिक दबाव से स्वतंत्रता मिल गई पर इस स्वतंत्रता का मूल्य भी उसके चुकाना पड़ा। सब अपने-अपने स्वार्थों की अधिकतम पूर्ति में जुट गये। समाज में व्यक्ति की घनिष्ठता और आन्तरिकता भी इसी के साथ समाप्त हो गई और अलगाव की प्रक्रिया ने जड़ जमाना शुरू किया।

मार्क्स ने यह ध्यान दिलाया कि औद्योगिक समाज में उत्पादन कार्य बड़े पैमाने पर होता है। मशीनों द्वारा बड़े पैमाने में उत्पादन करने के दो दुष्परिणाम होते हैं। प्रथम तो

यह है कि मशीन स्वयं ही श्रमिकों के अनेक कार्य तेजी से कर लेती है जिससे बेरोजगारी बढ़ती है। द्वितीय उत्पादन बड़े पैमाने में होने के कारण बहुधा अति उत्पादन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसके फलस्वरूप व्यापारिक मन्दी का चह आता रहता है जो कि बेरोजगारी को बढ़ाता है। मजदूरों के वेतन को कम करता है और आर्थिक संकट को उत्पन्न करता है। उसका सबसे बुरा प्रभाव श्रमिक पर पड़ता है। इसलिए सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति भी उनका अलगाव बढ़ता है।

अलगाव के उत्तरदायी कारक तथा कारण

पारकीयकरण आधुनिक जटिल विशाल एवं अवैयक्तिक समाज व्यवस्था की ही उपज है। अतः इसके प्रमुख कारणों को इसी समाज व्यवस्था की प्रकृति में खोजा जा सकता है। जिन्हें निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत करते हैं।

1. समुदाय का बड़ा आकार
2. सामाजिक भिन्नतायें
3. संरचनात्मक विभेदीकरण
4. संरचनात्मक एकता में कमी
5. सामाजिक परिवर्तन की द्रुतगति
6. अधिक सामाजिक गतिशीलता
7. द्वितीयक समिति और नियंत्रण की प्रधानता
8. अवैयक्तिक सामाजिक सम्बन्ध

अलगाव के अन्तर्गत शक्तिहीनता की भावना पनपती है। व्यक्ति में अकेलेपन, उदासीनता, विराग, खालीपन के भाव आदि उत्पन्न होते हैं। इसके परिणमस्वरूप समाज के

सामान्य सहभागी उद्देश्यों और विश्वासों के प्रति उसकी आस्था कम होती है। वह मशीन के पुर्जे की भाँति काम करता रहता है। उसकी सामाजिक मामलों में न कोई रुचि होती है और न कोई लगाव। अगर वह किसी उद्योग में कार्य करता है तो उसका एक मात्र उद्देश्य वेतन प्राप्त करना होता है। वह उद्योग से प्राप्त लाभ हानि के सम्बन्ध में अपना दिमाग नहीं लगाता। उसकी उन्नति की बात नहीं सोचता। मशीन की तोड़फोड़ करते हुए भी वह नहीं हिचकिचाता। क्योंकि स्वयं उद्योग से उद्योगपति से उसका कोई लगाव नहीं है। जब यही अलगाव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में फैल जाता है तो विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पारकीयकरण जिन परिणामों को जन्म देता है सामाजिक विघटन का उन्हीं परिणामों से पोषण होता है।

राजनीतिक शक्ति की अवधारणा तथा राज्य का सामाजिक वर्ग से सम्बन्ध

मार्क्स राज्य को प्राकृतिक संस्था नहीं मानता वह राज्य की सबकी भलाई में रत संस्था भी नहीं मानता है। मार्क्स ने राज्य को एक राजनीतिक शक्ति कहा है जो वर्ग के नियंत्रण में रहती है जिसका उद्देश्य वर्ग के हितों का संरक्षण करना तथा दूसरे वर्ग का उद्देश्य करना है जिस वर्ग के अधीन वह शक्ति रहती है। उसका उत्पादन के साधन पर नियंत्रण रहता है। पूँजीवादी व्यवस्था में राज्य पर पूँजीपति वर्ग का नियंत्रण रहता है और यह इस सत्ता के माध्यम से अपने हितों का संरक्षण करते हैं।

मार्क्स ने राज्य की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "राज्य एक ऐसी चीज है जिसके माध्यम से प्रशासक वर्ग की इच्छा बाकी के वर्गों पर लादी जाती है। मार्क्स का मत है कि आदिम समाज में राज्य नहीं था किन्तु जब वर्गों की उत्पत्ति आपस में संघर्ष की वृद्धि हुई तब विशेषाधिकारी वर्ग ने अपनी हितों की रक्षा हेतु सशक्त बल की

आवश्यकता महसूस हुई जिसके परिणामस्वरूप राज्य की उत्पत्ति हुई कहने के लिए राज्य जनता की शक्ति के रूप में परिभाषित किया गया किन्तु राज्य पर सदैव नियंत्रण शोषण वर्ग का हो रहा है।

मार्क्स का मत है कि राज्य की प्रकृति एवं कार्य शक्तिशाली वर्ग के हितों की रक्षा करना ही है। दास युग में राज्य स्वामियों की रक्षा करता था। सामन्तवादी युग में राज्य पर सामन्तवादी वर्ग का अधिकार था। पूँजीवादी युग आते—आते राज्य का स्वरूप प्रजातंत्र का हो गया लेकिन उस प्रजातंत्र ने भी पूँजीपतियों के हित का ही समर्थन किया। पूँजीवादी युग के बाद राज्य का आस्तित्व तब तक बना रहेगा जब तक पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित शोषण का समूल नष्ट न हो जाये। अतः इस संक्रमण काल में राज्य यथावत रहेगा किन्तु इसकी शक्ति श्रमिकों के हाथ में आ जायेगी।

मार्क्स के अनुसार राज्य सदा प्रभावशाली वर्ग के आधीन रहता है।

विचारधारा का सिद्धान्त

मार्क्स के विचारों ने समाजवादी विचारधारा को एक नया मोड़ एक नई दिशा दी उनके विचारों ने तत्कालीन समाजवादी विचारधारा को काफी प्रभावित किया। उसके विचारों से प्रभावित होकर रूस में क्रान्ति हुई उसके विचारों के अनुरूप समाज का गठन हुआ तथा नई आर्थिक व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास किया गया। उसके विचारों ने पूर्वी यूरोप के कम्युनिष्ट राष्ट्रों एवं चीन को भी प्रभावित किया। सभी समाजवादी उसके विचार से प्रभावित रहे हैं। मार्क्स ने समाजवाद को पूर्वकालीन समाजवादी विचारों से अलग एक नये रूप में रखा जिसे वैज्ञानिक समाजवाद के नाम से जाना जाता है।

मार्क्सवाद की वैचारिकी में वर्ग संघर्ष तथा वर्ग हित की चेतना पर विशेष जोर दिया गया है। मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त भौतिकवादी व्याख्या और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त पर आधारित है। मार्क्स वर्ग संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानते हैं वे कहते हैं— अब तक आविर्भूत समस्त समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। उनका कहना है कि समाज में सदैव विरोधी आर्थिक वर्गों का आस्तित्व रहा है यह वर्ग संघर्ष समाज में विद्यमान दो परस्पर विरोधी हितों वाले वर्गों में चलता रहता है। इन वर्गों का आधार आर्थिक है। इनमें एक वर्ग आर्थिक सत्ता प्राप्त वर्ग है जिसके पास उत्पादन के साधनों का तत्व है और दूसरा वर्ग केवल शारीरिक श्रम करता है। यह दूसरा वर्ग आर्थिक सत्ता से विहीन श्रम बेंचकर जीवन निर्वाह करने वाला वर्ग है। मार्क्स का कथन है कि हर युग में दोनों वर्गों का किसी न किसी रूप में आस्तित्व रहा है। पहला वर्ग सदैव दूसरे वर्ग का शोषण करता है। समाज में शोषक और शोषित ये दो वर्ग सदैव आपस में संघर्ष करते रहे हैं। इन दोनों वर्गों में समझौता कभी भी सम्भव नहीं है।

विचारधारा संरचना के एक उत्कृष्ट मार्ग के रूप में

मार्क्स ने अपनी वैचारिकी को अधिसंरचना के एक भाग के रूप में स्पष्ट किया है। मार्क्स ने सम्पूर्ण सामाजिक संरचना को दो भागों में बांटा है। अधिसंरचना और अधोसंरचना। मार्क्स ने समाज के सम्पूर्ण ढांचे के ऊपरी भाग को अधिसंरचना और बुनियादी और निचले भाग को अधोसंरचना कहा है। मार्क्स का मत है कि इन्हीं दोनों के सम्मिलित रूप से समाज की सम्पूर्ण संरचना का निर्माण होता है।

मार्क्स के अनुसार उत्पादन शक्ति और उत्पादन सम्बन्ध के सम्पूर्ण योग से ही आर्थिक संरचना का निर्माण होता है। इन्हीं को अधोसंरचना कहा गया है। इसी

अधोसंरचना पर समाज की अधिसंरचना टिकी हुई है। अधिसंरचना के अन्तर्गत सामाजिक

जीवन के अन्य पक्ष जैसे— सामाजिक, राजनैतिक, बौद्धिक, वैधानिक, सांस्कृतिक आते हैं।

NOTES

मार्क्स के मतानुसार अधोसंरचना के अनुरूप ही अधिसंरचना की प्रकृति निश्चित होती है। समाज के विकास का इतिहास वास्तव में उत्पादन प्रणाली के विकास का इतिहास है। इसीलिए उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होने पर विभिन्न सामाजिक वर्गों की प्रकृति तथा पद, लोगों के विश्वास, नैतिकता, आदर्श, कला, साहित्य, सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं में भी परिवर्तन हो जाता है। सामाजिक परिवर्तन का इतिहास वास्तव में समाज की अधोसंरचना में परिवर्तन का इतिहास है।

विचारधारा से सम्बन्धित तीन सिद्धान्त

1. प्रत्येक युग में दो वर्ग पाये जाते हैं। पहला वर्ग वह होता है जिसका उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है। दूसरा वर्ग वह होता है जो केवल काम करता है। यह वर्ग आर्थिक सत्ता से विहीन काम बेंचकर जीवनयापन करने वाला होता है। पहला वर्ग सदैव दूसरे वर्ग का शोषण करता है। इस शोषण के कारण समाज में वर्ग संघर्ष होता है।
2. वर्गों में वर्ग चेतना उत्पन्न होती है। जब वर्ग चेतना अपने चरम बिन्दु पर पहुंच जाती है तो वर्ग संघर्ष होता है। वर्ग संघर्ष की परिणति सर्वहारा क्रान्ति के रूप में होती है।
3. सर्वहारा क्रान्ति के बाद पूँजीवादी व्यवस्था समाप्त हो जायेगी तथा एक नयी संरचना बनेगी जो सर्वहारा वर्ग के अनुरूप होगी। समाज की जो नई संरचना होगी

उसमें कोई वर्ग नहीं होगा और न कोई राज्य होगा। यह समाज वर्गविहीन समाज होगा। इस समाज में शोषण नहीं होगा अर्थात् समाज शोषण विहीन होगा।

मार्क्स के मुख्य सिद्धान्त नए नहीं थे किन्तु उन्होंने पुराने विचारों को विशदएवं व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत और उन्हें नवीन एवं प्रभावकारी रूप दिया उनकी विचारधारा में जहां एक ओर सर्वहारा वर्ग की स्पष्ट हित कामना झलकती है। वहीं दूसरी ओर विकासवादी और क्रान्तिकारी दृष्टिकोण में अनुपम सायंजस्य भी देखने को मिलता है। मार्क्स के सिद्धान्तों में भी कमियां हैं और सत्यता तो यह है कि कोई भी सामाजिक सिद्धान्त पूर्णतया दोषरहित हो भी नहीं सकता। मार्क्सवादी दर्शन इस अर्थ में भी एक वैज्ञानिक दर्शन है कि इसका उपयोग न केवल विश्व को समझाने के लिए बल्कि उसे बदलने के लिए भी किया जा सकता है और किया भी गया है।

NOTES

महत्वपूर्ण परीक्षा पर्यायी प्रश्न

1. कार्लमार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकतवाद की विवेचना कीजिए?
2. कार्लमार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवादी की व्याख्या कीजिए?
3. कार्लमार्क्स के सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए?
4. मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को विवेचना करिये?5
5. कार्लमार्क्स के सर्वहारा क्रान्ति के सिद्धान्त की विवेचना करिये?
6. सर्वहारा क्रान्ति के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए?
7. सर्वहारा के सिद्धान्त पर अपने विचार दीजिए?
8. मार्क्स की समाजवादी व्यवस्था की अवधारणा स्पष्ट कीजिए?
9. अलगाव की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए? तथा इसके उत्तरदायी कारण बताइये?
10. अलगाव वाद पर मार्क्स के विचार व्यक्त करिये?
11. राज्य के सम्बन्ध में मार्क्स के विचारों का वर्णन कीजिए?
12. मार्क्स का वैचारिकी का सिद्धान्त स्पष्ट कीजिए?

इमाइल दुर्खीम (1858'1917)

NOTES

फ्रांस के सामाजिक विचारकों में समाजशास्त्र के जन्मदाता श्री आगस्ट काम्टे के उत्तराधिकारों के रूप में श्री इमाइल दुर्खीम का नाम अत्यन्त प्रतिष्ठा एवं सम्मान से लिया जाता है। दुर्खीम ने काम्टे की ही भाँति सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में निरीक्षण परीक्षण तथा वर्गीकरण पर अत्यधिक बल दिया। आप वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रबल समर्थक थे। दुर्खीम का आग्रह था कि सामाजिक घटनाएं इतनी अधिक सरल व सुगम नहीं हैं कि वास्तविक तथ्यों का संकलन व उनका निरूपण अनावश्यक है। दुर्खीम के अनुसार समस्त सामाजिक घटनाओं का कारण समाज है। क्योंकि मनुष्य तथा उसके समस्त किया कलापों का निर्धारण समाज ही है। मनुष्य को कुछ भी करता है। वह इसलिए कि उस पर उसके समूह या समाज का जिसका कि वह सदस्य है। सामूहिक चेतना भावना या प्रवृत्ति का दबाव पड़ता है। और इस दबाव की वास्तविक प्रवृत्ति को समझे बिना किसी भी सामाजिक घटना को समझना सम्भव नहीं है चाहे वह धर्म हो आत्महत्या हो या और कुछ। दुर्खीम के समस्त सिद्धान्तों में समूहवाद एवं प्रत्यक्षवाद पर अत्यधिक बल दिया गया है समूहवाद से हमारा तात्पर्य उस सामान्य समाजशास्त्रीय सिद्धान्त से है।

जीवन परिचय

फ्रेन्च दार्शनिक तथा समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम का जन्म सन् 1858 में फ्रांस के एपीनल में हुआ था। पेरिस में कुछ दिनों शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात दुर्खीम जर्मनी चले गये और वहीं पर उन्होंने अर्थशास्त्र लोक मनोविज्ञान, सांस्कृति मानव शास्त्र आदि का व्यापक अध्ययन किया और अन्त में बोर्डिंगर विश्वविद्यालय में सामाजिक विज्ञान के प्रोफेसर

नियुक्त हुए। उस उसमय विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध मनोविज्ञानिक अल्फेड एस्पिनास भी प्रोफेसर थे जिनका समूह मस्तिष्क सम्बन्धी विचार एक उल्लेखनीय सिद्धान्त है और उनके इस सिद्धान्त से मिलता जुलता ही दुर्खीम का समूह मस्तिष्क का सिद्धान्त है। दुर्खीम ने एस्पिनास के सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना करके उसे परिषृत करने का प्रयत्न किया ताकि उसे बोधगम्य स्वरूप प्राप्त हो सके। इसके पश्चात आप पेरिस विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र तथा शिक्षा के प्रोफेसर नियक्ता हुये। इसके पहले ही उन्हें सन् 1893 में इसी विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि मिल चुकी थी। आपके थीसिस का विषय था।

De la division du travail social (the cablevision of Labour in society)

यह आपका सर्वप्रथम तथा एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ समझा जाता है। सन् 1998 में दर्खीम ने *l'annee Sociologique* नामक समाजशास्त्र सम्बन्धी एक पत्रिका प्रकाशित करनी आरम्भ की और स्वयं ही उसके सम्पादक रहे। सन् 1917 में इस असाधारण प्रतिभासम्पन्न समाजशास्त्री की मृत्यु हुई।

दुर्खीम की प्रमुख कृतियाँ

1- The Division of labour in Society	1893
2- The Rules of sociological method	1895
3- Suicide	1897
4- Elementary Forms of Religious life	1912
5- Education and sociology (After death)	1922
6- Sociology and philosophy	1924
7- Moral education	1925
8- Sociology and saint simon	1925
9- Pragmatism and sociology	1955

समाज की स्थिति व विघटन के प्रति उनकी चिन्ता

NOTES

दुर्खीम का मत है कि आदिकालीन समाज में उनका संगठन छोटे आकार का होता था तथा आवश्यकताएं भी सीमित थी उनमें सामाजिक आर्थिक कार्य जीवन के ढंग आधार विचार धारणा आदि में भिन्नता न के बराबर थी। सदस्यों में भी मानसिक नैतिक आहार पर काफी समानता थी उन पर जनमत प्रथा, परम्परा एवं धर्म का दबाव रहता था इन सबके परिणाम स्वरूप व्यक्तिगत समानता के आधार पर समाज में व्यवस्था बनी रहती थी जिसके कारण समाज में एकता बनी रहती थी।

धीरे धीरे समाज की परिस्थितियों में परिवर्तन आने लगा। समाज में जनसंख्या बढ़ी तथा लोगों की आवश्यकताएं भी बढ़ गयी बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बड़े पैमाने पर उत्पादन कार्य होने लगा। पहले उत्पादन के सभी कार्य व्यक्ति स्वयं करता था किन्तु बड़ी मशीन लग जाने से अलग अलग व्यक्ति उत्पादन प्रक्रिया में अलग अलग कार्य करने लगे। जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्तिगत भिन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। साथ ही साथ समाज में स्वार्थों का जन्म हुआ।

दुर्खीम के अनुसार समाज में व्यक्ति पर दो प्रमाण पड़ता है। स्वस्थ्य प्रभाव एवं अस्वस्थ्य प्रभाव। समाज द्वारा स्वस्थ्य प्रभाव पड़ने पर व्यक्ति में निराशा अकेलापन या इसी प्रकार के अन्य विघटित करने वाली भावना का विकास उनके मन में नहीं होता है। व्यक्ति सामूहिक मनोभाव से रचनात्मक कार्य करता रहता है जिससे समाज में प्रगति होती रहती है। किन्तु समाज द्वारा व्यक्ति पर अस्वस्थ्य प्रभाव पड़ता है तो उनके मन में अनेक प्रकार की व्यक्तिगत विघटन की भावनाएं जन्म लेती हैं सामाजिक विघटन, व्यक्तिगत विघटन के द्वारा होता है। सामाजिक विघटन सामाजिक परिवर्तन का एक अस्वस्थ्य रूप है।

औद्योगिक क्रान्ति सामाजिक विघटन के वसीयत के रूप में

यूरोप में 18वीं और 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति हुई। औद्योगिक क्रान्ति वह है जिसमें भाप का इंजन का प्रयोग किया गया जिसके परिणाम स्वरूप कारखानों में काफी बड़े बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। इस क्रान्ति ने यूरोपीय समाज को तीन प्रकार से प्रभावित किया। प्रथम यह कि इस क्रान्ति ने समान्तवाद को सम्पूर्ण यूरोप में कमजोर किया। दूसरो प्रभाव कुटीर उद्योग पर पड़ा। दस्तकारी और शिल्पकला के कगार पर पहुंच गया। तीसरा प्रभाव यह कि समाज दो वर्गों में विघटित हो गया पूंजीपति और श्रमिक वर्ग 18वीं शताब्दी में यूरोप में सामन्तवाद अपने चरम उत्कर्ष पर था।

NOTES

यूरोपीय क्रान्ति के परिणाम के विषय में दुर्खीम ने कहा कि यह सत्य है कि यूरोपीय समाज दो भागों में बट गया एक यांत्रित तथा दूसरा सावयवी। यांत्रिक समाज विछड़ा हुआ तथा दूरदाज के क्षेत्रों का समाज था औद्योगिक के समय यह माना गया था कि यह समाज टूटेगा नहीं इसको बनाये रखने वाले कारक थे। सामूहिक चेतना तथा दमनात्मक कानून दूसरी तरफ सावयवी समाज औद्योगीकरण के फलस्वरूप टूट गया था फिर भी उसे बनाये रखने में दुर्खीम के अनुसार निम्न कई कारण थे जैसे अनुबन्ध ठेका प्रक्रीयात्मक अन्तेनिमिकता तथा सामूहिक प्रतिनिधित्व। दुर्खीम का मत कि औद्योगिकरण या औद्योगिक क्रान्ति समाज को विखण्डित नहीं करेगा। बल्कि उसकी एकता को सुदृढ़ करेगा। दुर्खीम औद्योगिक क्रान्ति से भयभीत नहीं होते उनका मत है कि यांत्रिक समाज में जैसे जैसे विशिष्टीकरण बढ़ता है भेदभाव विकसित होता है तथा समाज में स्पष्टीकरण उत्पन्न होता है वैसे वैसे समाज में उदविकास के सोपान पर सावयवी स्तर पर पहुंचता हैं दुर्खीम का मत है कि श्रम विभाजन के परिणाम स्वरूप समाज टूट जायेगा।

यांत्रिक एवं सावयवी एकता

NOTES

दुर्खीम की प्रख्यात पुस्तक Social Division of Labour दो भागों में बटी हुई है। प्रथम भाग में सामाजिक एकता का विश्लेषण है। दुर्खीम का कथन है कि सामाजिक एकता के स्वरूप में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन यांत्रिक एकता से क्रमशः सावयवी एकता की ओर होता है। अतः सामाजिक एकता के दो विभिन्न रूप हैं। 1. यांत्रिक एकता 2. सावयवी एकता। प्रथम एकता की विशेषता एकरूपता हैं और द्वितीय की विभिन्नता। दुर्खीम के शब्दों में प्रथम एकता तब ही सम्भव होती हैं जब व्यक्ति का व्यक्तित्व सामूहिक व्यक्तित्व में विलीन हो जाता है। और दूसरी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का आस्तित्व अलग अलग मान्य हो जाता है।

यांत्रिक एकता

दुर्खीम का कथन है कि आदिकालीन समाज यांत्रिक एकता में बधा हुआ था आदि कालीन समाजों में उनका संगठन छोटे अकारों का होता था आवश्यकताएं थी उनके सामाजिक या आर्थिक कार्य जीवन के ढंग आचार विचार धारणा आदि में भिन्नता भी कम थी उन पर जनमत परम्परा, धर्म आदि का दबाव रहता था इस ठोस एकता को ही दुर्खीम ने यांत्रिक एकता कहा है क्योंकि उस समय सब लोग जनमत परम्परा, धर्म और राजा के दबाव से आंख मूंदकर या यंत्रवत् कार्य करते रहते थे इन जनमत परम्परा आदि का इतना प्रभाव होता था कि व्यक्ति रूप में किसी का भी कोई महत्व नहीं था और व्यक्ति का व्यक्तिगत सामूहिक व्यक्तिगत में इतना घुल मिल जाता था कि उसके अपने व्यक्तिगत का आस्तित्व तक मिट जाता था। वह समाज के साथ यंत्रवत् सोचता काम करता और आदेशों का पालन करता था।

श्रम–विभाजन के फलस्वरूप कार्यों का विशेषीकरण हुआ क्योंकि श्रम विभाजन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति निरन्तर एक ही प्रकार का कार्य करता रहता है। इस विशेषीकरण के फलस्वरूप व्यक्तिगत भिन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती गई और इसी के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के स्वार्थों का जन्म हुआ। श्रम विभाजन में सहयोगिता का होना प्रथम आवश्यक तत्व है। क्योंकि श्रम विभाजन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार का कार्य करता है। यह आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों के साथ एक सूत्र में बाँध देती है और दूसरे के साथ सहयोग करने का बाध्य करती है। उदाहरणार्थ— श्रम विभाजन और विशेषीकरण के कारण हो सकता है कि जूते बनाने वाला साइकिल बनाने का काम और साइकिल बनाने वाला जूते बनाने का काम न कर सके। परन्तु दोनों को ही एक–दूसरे की सेवाओं की आवश्यकता है। इसलिए वे दोनों एक–दूसरे से सम्बन्धित और आधारित हो जाते हैं।

आधुनिक युग में सामाजिक श्रम विभाजन और विशेषीकरण के फलस्वरूप भी प्रत्येक व्यक्ति का विशेष प्रकार का कार्य, व्यक्तिगत तथा अनुभव होता है। परन्तु अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे अन्य अनेक व्यक्तियों पर या विस्तृत अर्थ में समाज पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार आधुनिक समाज में श्रम विभाजन और विशेषीकरण होते हुए भी व्यक्ति और व्यक्ति में व्यक्ति और समूह में समूह और समूह में एक पारस्परिक सम्बन्ध, पारस्परिक निर्भरता एवं एकता है। यही सावयवी एकता की स्थिति है।

श्रम-विभाजन वृद्धि की व्याख्या/श्रम-विभाजन का विकृत रूप

NOTES

दुर्खीम के अनुसार सबसे प्राचीन समाजों में श्रम-विभाजन स्त्री-पुरुष के भेद पर आधारित था। पुरुष शिकार करने या फल एकत्र करने जाते थे और स्त्रियाँ घर का काम-काज और बच्चों का पालन-पोषण करती थी। चूँकि इस युग में आर्थिक कार्य अत्यधिक सीमित था उत्पादन नाममात्र का था। प्रत्येक व्यक्ति प्रायः सभी प्रकार के सामाजिक और आर्थिक कार्यों को कर सकता था। राजा पुजारी भी हो सकता था और शिकारी भी। इस प्रकार प्राचीन समाज में आधुनिक अर्थ में कोई विशेष श्रम-विभाजन और विशेषीकरण नहीं था। इस प्रकार के समाजों “यान्त्रिक एकता” थी।

परन्तु जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ वैसे-वैसे आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलू विकसित होते गये। वस्तुओं की माँगे बढ़ी और आवश्यकताओं में विविधताओं का विस्तार हुआ।

दुर्खीम ने लिखा है कि श्रम-विभाजन का प्रत्यक्ष सम्पर्क जनसंख्या के घनत्व से है। प्राचीन समाज में जनसंख्या कम थी और इसलिए सामाजिक कार्य भी सीमित थे। अतः श्रम-विभाजन की कोई विशेष आवश्यकता अनुभव नहीं की जाती थी। परन्तु जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ सामाजिक आवश्यकतायें बढ़ी और विभिन्न सामाजिक-सामाजिक कार्य विशेषकर आर्थिक उत्पादन कार्य बड़े पैमाने में होना जरूरी हो गया। अतः श्रम विभाजन की प्रणाली को भी लागू करना स्वाभावतः ही अनिवार्य हो गया। इस प्रकार जनसंख्या का बढ़ता श्रम-विभाजन के विकास का एक कारण बन जाता है।

दुर्खीम कहते हैं "आत्महत्या" शब्द का प्रयोग ऐसी किसी भी मृत्यु के लिए किया जा सकता है जो कि स्वयं मृत व्यक्ति के द्वारा की गई किसी सकारात्मक या नकारात्मक क्रिया का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम है।

दुर्खीम के मतानुसार जब हम व्यक्ति को भूल जाते हैं और प्रत्येक समाज में पाई जाने वाली आत्महत्या की प्रवृत्ति को स्वयं उसी समाज की प्रकृति में ढूढ़ने की कोशिश करते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि आत्महत्या तथा सामाजिक पर्यावरण की कठिपय अवस्थाओं के बीच का सम्बन्ध उतना ही प्रत्यक्ष व निरन्तर है जितना कि प्राणी शास्त्रीय व भौतिक कारणों तथा आत्महत्या के बीच का सम्बन्ध अनिश्चित व अस्पष्ट है।

सामाजिक शक्तियाँ समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों को क्यों नहीं प्रभावित करती? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए दुर्खीम ने समझाया है कि यद्यपि आत्महत्या के लिए प्रेरित करने वाली ये शक्तियाँ समाज में क्रियाशील रहती हैं। फिर भी इनका प्रभाव किसी व्यक्ति पर तब तक नहीं पड़ता है। जब तक स्वयं व्यक्ति का व्यक्तित्व उसे अपना न ले। यही कारण है कि निर्धनता अथवा असुखी वैवाहिक जीवन की यातना को कुछ लोग तो सह लेते हैं। अर्थात् उस प्रतिकूल सामाजिक परिस्थिति से उसका अनुकूलन हो जाता है। जबकि कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके यही स्थिति असहनीय बन जाती है और उसके साथ अनुकूलन करने में अपने को असमर्थ पाकर आत्महत्या की ओर प्रवृत्त होते हैं।

दुर्खीम ने आत्महत्या की समाजशास्त्रीय परिभाषा इन शब्दों में की है "आत्महत्या शब्द का प्रयोग उन सभी मृत्युओं के लिए किया जाता है कि जो स्वयं मृत व्यक्ति के

किसी सकारात्मक या नकारात्मक ऐसे कार्य के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होते हैं जिनके

बारे में वह (व्यक्ति) जानता है कि वह कार्य इसी परिणाम (मृत्यु) को उत्पन्न करेगा।

NOTES

दुर्खास के उपयुक्त कथन से आत्महत्या सम्बन्धी उनके सिद्धान्त का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने इन विषय पर प्रचुर ऑकड़े एकत्रिक किये हैं। इन ऑकड़ों के विश्लेषण के आधार पर आपके निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

1. आत्महत्या की दर प्रत्येक वर्ष लगभग एक सी रहती हैं।
2. सर्दियों की तुलना में गर्मियों में आत्महत्यायें अधिक होती हैं।
3. स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक आत्महत्यायें करते हैं।
4. कम आयु वालों की अपेक्षा अधिक आयु के व्यक्तियों में आत्महत्याओं की दर अधिक पाई जाती है। ?
5. गाँवों की तुलना में शहरों में अधिक आत्महत्यायें होती हैं।
6. सैनिक लोग आम जनता की अपेक्षा अधिक आत्महत्यायें करते हैं।
7. कैथोलिक धर्म के मानने वालों की अपेक्षा प्रोटेस्टेण्ट धर्म के मानने वाले अधिक आत्महत्यायें करते हैं।
8. अविवाहित विवाह विच्छेद द्वारा पृथक विधवा तथा विधुर लोगों में विवाहितों की अपेक्षा आत्महत्या की दर अधिक पायी जाती है।
9. विवाहितों में भी बच्चे वाले व्यक्तियों की तुलना में वे लोग अधिक आत्म हत्यायें करते हैं। जिनके यहाँ बच्चे पैदा नहीं होते या पैदा होकर मर जाते हैं।

ऐसा देखा गया है कि अविवाहित, विवाह-विच्छेद द्वारा पृथक विधवा, विधुर और वे लोग जिनका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं है। अधिक आत्महत्या करते हैं। ऐसा इस कारण

होता है कि ऐसे व्यक्तियों पर परिवार समूह का वह स्वस्थ प्रभाव नहीं पड़ पाता है। जोकि वास्तव में उन पर पड़ना चाहिये। एक स्वाभाविक पारिवारिक जीवन प्रेम, स्नेह, वात्सल्य आदि भावनाओं के आधार पर सदस्यों को एक सूत्र में बाँध रखता हो और आत्महत्या द्वारा उस बन्धन को तोड़ने का विचार उनके मन में जागृत हो ही नहीं पाता है।

आत्म हत्या के प्रकार

दुर्खीम का यह दृढ़ मत था कि आत्महत्या मनोविकारकीय मनोवैज्ञानिक या प्राकृतिक कारणों के द्वारा नहीं अपितु कतिपय सामाजिक कारणों के कारण ही घटित होती हैं और चूँकि आत्महत्या एक सामाजिक घटना है। अतः इनको घटित करने में सामाजिक कारक ही महत्वपूर्ण है। अपने इस विचार को सिद्ध करने के सन्दर्भ में दुर्खीम ने आत्महत्याओं के तीन सामाजिक प्रारूप निश्चित किये हैं— 1. अहमवादी आत्महत्या, 2. परार्थवादी आत्महत्या, 3. विसंगति या अस्वाभाविक आत्महत्या।

1. अहमवादी आत्महत्या

दुर्खीम के अनुसार इस प्रकार की आत्महत्या उस समय घटित होती है जबकि व्यक्ति यह महसूस करने लगता है कि जिस समूह का वह सदस्य है। वह समूह उसका तिरस्कार, बहिष्कार या अवहेलना कर रहा है। ऐसी स्थिति में उसके आत्मसम्मान को आघात पहुँचता है और उससे यह भावना पनप जाती है कि दुनियाँ में उसकी परवाह करने वाला कोई नहीं है। ऐसी अवस्था में वह अपने आत्म सम्मान की रक्षा आत्महत्या करके करता है।

2. परमार्थी या परार्थवादी आत्महत्या

NOTES

परमार्थी आत्महत्या अपने लिए नहीं, वरन् दूसरों के लिये यह परमार्थ के लिए की गई आत्महत्या हो दुर्खीम के अनुसार जब व्यक्ति का समाज या समूह के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज या समूह में मिल जाता है। तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने समूह या समाज के लिए आत्मबलि दे देता है। ऐसी स्थिति तब घटित होती है जब समाज में अत्यधिक एकता व संगठन देखने को मिलता है। परमार्थी आत्महत्या की प्रकृति को समझाने के लिए दुर्खीम ने तीन प्रकार बताये हैं— 1. अनिवार्य परमार्थी आत्महत्या, 2. ऐच्छिक परमार्थी आत्महत्या, 3. उग्र परमार्थी आत्महत्या।

अस्वाभाविक या विसंगति आत्महत्या

अस्वाभाविक आत्महत्या वह है जो कि व्यक्ति के जीवन में आकस्मिक परिवर्तनों के फलस्वरूप अस्वाभाविक परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने के कारण घटित होती हैं और व्यक्ति उनमें अनुकूलन करने में असफल होता है तो जिस मानसिक तनाव अथवा अशान्ति का वह अनुभव करता है। उससे अपने को विमुक्त करने हेतु वह आत्महत्या कर लेता है। एकाएक दिवालिया हो जाने पर अथवा भारी लाटरी आ जाने पर अत्यधिक गम या खुशी में व्यक्ति द्वारा आत्महत्या कर लेना स्वाभाविक आत्महत्या का ही उदाहरण है।

धर्म का सिद्धान्त

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक “द इलीमेन्ट्स फार्म्स ऑफ रिलीजियट लाइफ” में धर्म की प्रकृति उत्पत्ति के कारण प्रभाव आदि के विषय में अत्यधिक विस्तृत तथा गहन व्याख्या प्रस्तुत की है। अपने धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त के द्वारा यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि धर्म सम्पूर्ण रूप से एक सामाजिक या असामाजिक घटना है और वह उस अर्थ में कि

नैतिक रूप से सामूहिक चेतना का प्रतीक ही धर्म हो। दुर्खीम का अन्तिम निष्कर्ष यह है कि समाज ही वास्तविक देवता है।

धर्म का उद्भव और उसकी भूमिका से सम्बन्धित पूर्ण सिद्धान्त

दुर्खीम के अनुसार सामूहिक जीवन की समस्त वस्तुओं या घटनाओं को चाहे सरल हो या जटिल वास्तविक हो या आदर्शात्मक दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है— 1. साधारण और 2. पवित्र। समस्त धर्मों का सम्बन्ध पवित्र पक्ष से होता है। समाज के सदस्य जिन्हें पवित्र समझते हैं उन्हें अपवित्र या साधारण से सदा दूर रखने का प्रयत्न करते हैं और इस उददेश्य की पूर्ति के लिए अनेक विश्वासों, आचरणों, संस्कारों और उत्सवों को जन्म देते हैं। “धर्म” इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम है। चूँकि इन प्रत्यनों से सम्बन्धित आचरणों, संस्कारों आदि के पीछे समस्त समाज की अभिमति और दबाव होता है। इस कारण समाज की सामूहिक सत्ता के सामने मनुष्य को नतमस्तक होना ही पड़ता है। यहाँ से धर्म की नींव पड़ती है।

अपने इस सिद्धान्त की पुस्ति में दुर्खीम ने ऑस्ट्रेलिया की अरुष्टा जनजाति का अध्ययन प्रस्तुत किया और कहा जब त्यौहारों तथा उत्सवों पर जब गोत्र के सभी लोग एक साथ एकत्र होते हैं तो प्रत्येक सदस्य को ऐसा अनुभव होता है कि समूह की शक्ति उनकी व्यैक्तिक शक्ति से भी अधिक उच्च और महान है। वस्तुतः यह समूह या समाज धार्मिक पूजा का प्रतीक हो जाता है।

धर्म की संरचना पवित्र और अपवित्र या अपवित्रता के साधन

दुर्खीम का कथन है कि टोटमवाद के आधार पर ही पवित्र और साधारण वस्तुओं में भेद करने की भावना का जन्म हुआ। अतः टोटमवाद समस्ट धर्मों का प्राथमिक स्तर है।

ऐसा टोटमवाद की प्रकृति से ही सम्भव हुआ क्योंकि टोटमवाद नैतिक कर्तव्यों और मौलिक विश्वासों की वह समष्टि हो जिसके द्वारा समाज और पशु पौधे या अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के बीच एक पवित्र आलौकिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। टोटमवाद की निम्नलिखित विशेषतायें उल्लिखित हैं—

1. टोटम के साथ एक गोत्र के सदस्य अपना कई प्रकार का गूढ़, आलौकिक तथा पवित्र सम्बन्ध मानते हैं।
2. टोटम के साथ इस आलौकिक तथा पवित्र सम्बन्ध के आधार पर ही यह विश्वास किया जाता है कि टोटम उस शक्ति का अधिकारी है जो उस समूह की रक्षा करती है। सदस्यों को चेतावनी देती है और भविष्यवाणी करती है।
3. टोटम के प्रति विशेष भय, श्रद्धा, भक्ति और आदर की भावना होती है। टोटम को मारना खाना या किसी प्रकार से चोट पहुँचाना निषिद्ध होता है और उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया जाता है। टोटम की खाल को विशेष-विशेष अवसरों पर धारण किया जाता है। टोटम सम्बन्धी निषेधों का उल्लंघन करने वालों की समाज द्वारा निन्दा की जाती है।
4. टोटम के प्रति भय, भक्ति और आदर की जो भावना होती है। वह इस बात पर निर्भर नहीं होती कि कौन वस्तु टोटम हो या वह कैसी है। दुर्खीम के मतानुसार टोटम सामुदायिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक है और टोटम की उत्पत्ति उसी सामुदायिक रूप में समाज के प्रति अपनी श्रद्धाभाव के समस्त सदस्यों को एक नैतिक बन्धन में बाँधता है। यही कारण है कि टोटम समूह के सभी सदस्य अपने को एक दूसरे का भाई बहन मानते हैं और वे आपस में कभी विवाह नहीं करते।

पवित्र वस्तुयें मूल्यों के प्रतीक के रूप में

दुर्खीम के अनुसार धर्म के अनेक सामाजिक प्रकार हैं और सर्वप्रथम तो यह कि धर्म मानव-जीवन को दो स्पष्ट भागों—साधारण तथा पवित्र में बाँट देता है। धर्म अपने सदस्यों को इन दोनों में एक स्पष्ट भेद मानते हैं तथा साधारण या अपवित्र कार्यों से दूर रहने की शिक्षा देता है क्योंकि पवित्र जीवन से दूर हो जाना धार्मिक भ्रष्टाचार है। इस प्रकार धर्म लोगों को पवित्र क्रियाओं को करने की दीक्षा देता है ताकि वे पापात्मक परिणामों से मुक्त रह सकें। यह भी शिक्षा देता है कि धार्मिक सेवाओं के स्थानों को उन स्थानों से दूर रखा जाये जहाँ साधारण कार्य किये जाते हैं।

NOTES

समाज एक सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में

धार्मिक कर्मकाण्ड और उनके प्रकार

दुर्खीम का मत है कि धर्म विश्वासों और धार्मिक क्रियाओं का एकीकृत रूप है जिसका सम्बन्ध पवित्र वस्तुओं से होता है। दुर्खीम का मत है कि विचारों का सम्बन्ध सभी समाजों में धर्म से होता है। समाज की यथार्थता विश्वासों के साथ जुड़े विचारों से होती है। विचार समाज का पूरी तरह से प्रतिनिधित्व करते हैं। दुर्खीम ने लिखा है कि समाज ही ईश्वर है।

धार्मिक विचारों और कर्मकाण्डों में प्रमुख अन्तर यह है कि धार्मिक विश्वास विचार का एक स्वरूप या प्रकार है जबकि कर्मकाण्ड का अर्थ क्रिया से है। धार्मिक विचारों और क्रिया को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता है। किसी भी धर्म के विश्वास को समझे बिना क्रिया को नहीं समझा जा सकता है। दुर्खीम के अनुसार धर्म एक एकीकृत व्यवस्था है और इसका सम्बन्ध विश्वासों और धार्मिक क्रियाओं से है।

दुर्खीम पूर्णरूप से प्रत्यक्षवादी विचारक थे। दुर्खीम ने किसी एक विशेष धर्म के विश्वासों को उच्च स्थान नहीं दिया है। धर्म चाहे कोई भी हो प्रतीकों का स्थान धर्म में काफी महत्वपूर्ण होता है। लेकिन आधार भूत विशेषताओं के आधार पर प्रतीक महत्वपूर्ण नहीं है। किसी भी एक कर्मकाण्ड पर यह तर्क लागू नहीं होता है कि कर्मकाण्ड प्रतीक नहीं होते। इनका स्वरूप अनुभाविक होता है तथा इन्हें इन्द्रियों से जाँचा और परखा जा सकता है। इसी कारण दुर्खीम धर्म के प्रारम्भिक तत्व के आधार पर कर्मकाण्डों को पहला स्थान दिया है तथा विश्वासों को दूसरा स्थान दिया है। कर्मकाण्ड मूर्ख होते हैं। इनकी व्याख्या की जा सकती है तथा इनको प्रमाणीकरण किया जा सकता है।

सामाजिक तथ्य

दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्र समस्त मानवीय क्रियाओं का अध्ययन नहीं करता बल्कि सामाजिक तथ्य ही समाजशास्त्र की वास्तविक अध्ययन वस्तु है। सामाजिक तथ्य के सम्बन्ध में दुर्खीम का सर्वप्रथम यह निर्णय है कि सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के समान समझना चाहिये। दुर्खीम ने वस्तु शब्द का चार पृथक—पृथक अर्थों में प्रयोग किया है—

1. सामाजिक तथ्य एक ऐसी वस्तु है जिसमें कुछ विशेष गुण होते हैं। जिन्हें बाहरी तौर पर देखा जा सकता है।
2. सामाजिक तथ्य एक ऐसी वस्तु है जिसको केवल अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है।
3. सामाजिक तथ्य एक ऐसी वस्तु है जिसका अस्तित्व मनुष्य पर बिल्कुल ही निर्भर नहीं है।

4. सामाजिक तथ्य एक ऐसी वस्तु है जिसको केवल बाहरी तौर पर देखकर ही माना जा सकता है।

प्रत्येक समाज में कुछ इस प्रकार की बातें अथवा तथ्य होते हैं जो कि प्राणी शास्त्रीय मनोवैज्ञानिक या भौतिक तथ्यों से सर्वथा भिन्न होते हैं दूसरे शब्दों में समाज में पाये जाने वाले कुछ विशेष प्रकार के तथ्यों की व्याख्या मनोविज्ञान, प्राणी शास्त्र या भौतिकशास्त्र के सिद्धान्तों द्वारा सम्भव नहीं है। दुर्खीम ने इसी प्रकार के तथ्यों को सामाजिक तथ्य माना है। दुर्खीम के अनुसार “सामाजिक तथ्य व्यवहार” (विचार) अनुभव या क्रिया का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वस्तुनिष्ठ रूप से सम्भव है और जो व्यक्ति को एक विशेषण है। व्यवहार करने को बाध्य करता है। इस प्रकार मन ही मन सोचा गया कोई विचार भी सामाजिक तथ्य की श्रेणी में नहीं आयेगा। क्योंकि उसका बाह्य रूप प्रकट नहीं है।

दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की अवधारणा को समझने के लिये दो शब्दों का बाहता और बाध्यता (दबाव) का प्रयोग किया है।

महत्वपूर्ण परीक्षापयोगी प्रश्न

1. दुर्खीम के सामाजिक एकता के सिद्धान्त की विवेचना कीजिये?
2. समाज में परिवर्तन का क्रम यान्त्रिक एकता से सावयवी एकता की ओर होता है।

इस कथन की व्याख्या कीजिये?

3. दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित श्रम विभाजन के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये?
4. दुर्खीम के धर्म के सिद्धान्त का वर्णन कीजिये?
5. दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धान्त की विवेचना कीजिये?

मैक्स वेबर (1864–1920)

NOTES

मैक्स वेबर का जन्म 21 अप्रैल 1864 में जर्मनी के इरफूर्ड नामक स्थान में एक धनी परिवार में हुआ था। उसके पिता एक प्रतिष्ठित उदारवादी, राजनीतिज्ञ थे। इस कारण उनके पास अनेक प्रमुख राजनीतिज्ञ नेता रहते थे। इस कारण वेबर को उन राजनीतिज्ञों तथा नेताओं के विचारों, भावनाओं पर दृष्टिकोणों से भी परिचित होने का मौका उन्हें मिलता रहा। तेरह वर्ष की आयु में उन्होंने एक ऐतिहासिक निबन्ध इतने सुन्दर ढंग से लिखा कि उसे पढ़कर लोग आश्चर्य चकित रह गये और बालक के भावी जीवन की एक झलक उसी के माध्यम से देख ली। तीन साल तक वेबर ने हैण्डल वर्ग विश्वविद्यालय में कानून की शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद जीवन में नवीनता लाने की इच्छा से सेना में भर्ती हो गये। जब वहाँ से काम छोड़कर लौटे तो बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रवेश किया और सन 1885 में कानून की उपाधि ली। 1891 में रोम का कृषि सम्बन्धी इतिहास लिखा। जिसने प्रचुर ख्याति पायी। 1892 में उसकी ख्याति और बढ़ी। फ्रेबर्ग विश्वविद्यालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुये। इसके बाद 1896 में हैण्डलबर्ग विश्वविद्यालय चले गये। परन्तु उनका बौद्धिक जीवन दीर्घकालीन बीमारी के कारण बिगड़ी अवस्था में 1918 अवस्था ने बना रहा। “शोषल रिफार्म एण्ड शोषल पालिटिक्स” नामक पत्रिका का सम्पादन किया। 1918 में वियना विश्वविद्यालय में प्रोफेसर कस काम शुरू किया। इस विश्वविद्यालय से फिर नियुनिख विश्वविद्यालय में चले गये वहीं सन 1920 में इनका देहान्त हुआ।

1. The protestant ethic and the spirit of capitalism (1906).

2. The Hindu social system (1950).

3. The Religion of China canfucarism and fascism (1951)

4. Ancient Iudaism (1952).

NOTES

सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त

वेबर की सामाजिक क्रिया की विचारधारा में क्रिया के सिद्धान्त का अपना एक अलग महत्व है। वेबर की सामाजिक क्रिया ही समाजशास्त्र की केन्द्रीय अध्ययन वस्तु है। इसको परिभाषित करते हुए लिखा है कि सामाजिक क्रिया जो कि व्याख्यात्मक बोध करने का प्रयत्न करता है जिससे कि इसकी गतिविधि और परिणामों में कारण सही स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जा सकता है—

मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया को दो भागों में विभाजित किया है—

1. वैयक्तिक क्रिया

2. सामाजिक क्रिया

इससे स्पष्ट है कि सामाजिक क्रिया वैयक्तिक क्रिया नहीं है सामाजिक क्रिया की प्रगति को स्पष्ट करते हुए वेबर ने लिख है— “किसी भी क्रिया को हमें तभी सामाजिक क्रिया कहना चाहिये जब कि उस क्रिया को करने वाले व्यक्ति य व्यक्तियों के द्वारा लगाये गये व्यक्तिनिष्ठ अर्थ के अनुसार उस क्रिया में दूसरे व्यक्तियों के मनोभाव तथा क्रियाओं का समावेश हो और उन्हीं के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।

सामाजिक क्रिया की कसौटी

NOTES

किसी भी क्रिया को सामाजिक क्रिया कहने से पहले निम्न कसौटियों पर कस लेना चाहिये।

1. सामाजिक क्रिया दूसरे व्यक्तियों के भूतकाल, वर्तमान या भवी व्यवहार द्वारा प्रभावित हो सकती है।
2. इस दृष्टि से प्रत्येक प्रकार की क्रिया यहाँ तक कि प्रत्येक प्रकार की बाह्य क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं कही जा सकती। वह क्रिया असामाजिक है। यदि वह पूर्णता जड़ अर्थात् बेजानदार वस्तुओं द्वारा प्रभावित होती है।
3. मानव प्राणियों का प्रत्येक प्रकार का सम्पर्क भी सामाजिक क्रिया नहीं कहा जा सकता वह उस सीमा तक सामाजिक कहा जायेगा जहाँ तक कर्ता का व्यवहार दूसरों के व्यवहार से अर्थ पूर्ण ढंग से सम्बन्धित और प्रभावित हो।
4. सामाजिक क्रिया न तो अनेक व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाली क्रिया एक सी क्रिया कहते हैं और न ही उस क्रिया को कहते हैं। केवल दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्रभावित है।

सामाजिक क्रिया की श्रेणियाँ

मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया को चार भागों में बाँटा है—

1. तार्किक क्रिया— तार्किक क्रिया वह है जो कि सचेत रूप में किसी योजना के अनुसार की जाये और उसमें लक्ष्य तथा साधनों का पूर्ण ध्यान रखा जाये तो वे क्रिया तार्किक क्रिया कहलाती है।

2. मूल्यांकनात्मक क्रिया— जो कि किसी कलात्मक धार्मिक या नैतिक आधार पर की जाती है और जिसे की बिना किसी तार्किक कारक के स्वीकार भी कर लिया जाता है। हम मूल्यांकनात्मक रूप से क्रिया इसलिए करते हैं कि जैसे ही व्यवहार की हमसे उन लोगों द्वारा आशा की जाती है जो धार्मिक या नैतिक आदर्शों की हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

3. प्रभावात्मक क्रिया—यह वह क्रियायें हैं जो आवेशों या संवेगों द्वारा प्रेरित होती है। इस प्रकार के व्यवहार प्रेम, शत्रुता, घृणा, प्रेम, क्रोध आदि के प्रभावों से प्रभावित होते हैं।

4. परम्परात्मक क्रिया— इसके अन्तर्गत वे क्रियायें आती हैं जो कि उस सामाजिक क्रियाओं के द्वारा नियंत्रित होती हैं। जिसका की अनेक व्यक्तियों के द्वारा बहुत समय उसे अनुसरण इसलिए किया जाता है कि भूतकाल से अनेक व्यक्ति वैसा ही करते चले आये हैं। प्रथाओं का अनुसरण एक परम्परागत क्रियाओं का उदाहरण है।

आधुनिक पूँजीवाद का विश्लेषण

मैक्स वेबर ने पूँजीवाद का विश्लेषण धर्म के समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया। वेबर ने विश्व के प्रमुख धर्मों का अध्ययन किया। इस अध्ययन के आधार पर उन्होंने धर्म और पूँजीवाद की व्याख्या की है। एक तरफ उन्होंने प्रोटेस्टेण्ट धर्म के आचार और पूँजीवाद की आत्मा का अध्ययन करते हैं। वहीं दूसरी तरफ यह देखते हैं कि हिन्दु कन्फ्यूशियस तथा बौद्ध धर्म ने पूँजीवाद की आत्मा को क्यों नहीं प्रभावित किया। वेबर ने प्रोटेस्टेण्ड आचार और पूँजीवाद आत्मा का सम्बन्ध वृहद सभ्यताओं के सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया है। वेबर का अध्ययन का उद्देश्य पूँजीवाद की आत्मा के विकास को खोज करता है। वेबर ने

अपनी पुस्तक 'दी प्रोटेस्टेण्ट एशिक्स एण्ड दी स्प्रिट ऑफ कैपिटलिज्म' में प्रोटेस्टेण्ट धर्म

के द्वारा पूँजीवाद के निर्माण में दिये गये महत्वपूर्ण योगदान को स्पष्ट किया है।

NOTES

मैक्स वेबर का मत है। जहाँ-जहाँ प्रोटेस्टेण्ट धर्म का प्रभाव था वहाँ-वहाँ पूँजीवाद को बढ़ावा मिला जैसे— हालैण्ड, ब्रिटेन, अमेरिका है। अधिकांश जर्मन जो कम पैसे वाले पूँजीपति हैं। कैथोलिक धर्म के तथा जिन देशों में कैथोलिक धर्म का प्रभाव अधिक है वहाँ पूँजीपतियों की संख्या कम होती है। मैक्स वेबर का कहना है कि भारत में पूँजीपतियों के अभाव का प्रमुख कारण हिन्दू धर्म है। क्योंकि हिन्दू धर्म में धन की अपेक्षा मोक्ष व परलोक को अधिक मान्यता दी गई है।

वेबर ने मनुष्य के कर्तव्यों पर अधिक बल दिया है एवं बतलाया कि कठिन परिश्रम करना ही प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। मनुष्य को परिश्रम का फल इसी जन्म में मिलता है। अतः मनुष्य को परिश्रम की भावना से काम करना चाहिये। इसकी मैक्स वेबर ने निष्कर्ष निकाला कि पूँजीवाद एक प्रकार की नैतिकता है जिसमें अनेकों विचार समन्वित हैं।

प्रोटेस्टेण्ट धर्म और पूँजीवाद

मैक्स वेबर ने विश्व के छः महान् धर्मों को चुन लिया वे धर्म हैं। कन्फ्यूशियस, हिन्दू बौद्ध, ईसाई, इस्लाम तथा यहूदी। वेबर ने इनमें से प्रत्येक धर्म आर्थिक आचारों का विश्लेषण किया और फिर उन आचारों के उस धर्म विशेष को मानने वाले लोगों के आर्थिक तथा सामाजिक संगठन पर पड़ने वाले प्रभावों को सिद्ध किया। इस विषय में मैक्स वेबर का अधिक महत्वपूर्ण निष्कर्ष उनकी सर्वाधिक प्रख्यात्मक रचना 'द प्रोटेस्टेण्ट एथिक्स एण्ड दी स्प्रिट ऑफ कैपिटलिज्म' में मिलता है। इसमें आपने प्रोटेस्टेण्ट धर्म और पूँजीवाद के

सम्बन्ध को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है। आपके मतानुसार प्रोटेस्टर धर्म में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो आर्थिक नियमों की व्यवस्था को उत्पन्न करने में सहायक हैं जिसे कि हम पूँजीवाद कहते हैं और यह प्रोटेस्टेण्ट ही था जिसने एक पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था के विकास में प्रत्यक्ष प्रेरणा प्रदान की परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म एक मात्र कार्य है।

अब प्रश्न यह है कि कौन सी ऐसी शक्ति है जो कि इस प्रकार की आर्थिक अवस्था को सम्भव बनाते हैं तथा उसे स्थिर रखती है। यह शक्ति वेबर के अनुसार प्रोटेस्टेण्ट धर्म का आर्थिक आचार है। पूँजीवादी व्यवस्था को बनाये रखने के लिए व्यक्ति के द्वारा जिन आचरणों को किया जाना आवश्यक है। उनके सम्बन्ध में लोगों को अनेक उपदेश प्रोटेस्टेण्ट धर्म से प्रभावित सामाजिक नेताओं से प्राप्त होते हैं। 'बेन्जामिन फ्रेन्कलिन जो आधुनिक पूँजीवाद के प्रतिपादक माने जाते हैं। उनके उपदेश बहुत कुछ इस प्रकार से हो। 'समय ही धन है' धन से धन कमाया जाता है। एक पैसा बचाना एक पैसा कमाना है। 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है' जल्दी और जल्दी उठाना व्यक्ति को स्वस्थ धनी और बुद्धिकान बनाता है।

यदि हम इन समस्त उपदेशों के पीछे-पीछे मनोभावों पर ध्यान दे तो हम स्पष्टतया यह पायेंगे कि सभी निर्देश एक विशेष पाद पर विशेष बल देते हैं वह यह है कि कार्य करना ही सबसे बड़ा गुण है और इस कारण हमें कम से कम इतना बुद्धिमान होना चाहिये और बचाये ताकि हम स्वस्थ्य और धनी हो सके। इस प्रकार के मूल सिद्धान्तों या मनोभावों के बिना आधुनिक पूँजीवाद कदापि सम्भव न होता। पूँजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेण्ट धर्म के आचारों का प्रभाव निम्न है—

1. काम करना ही सबसे बड़ा गुण है यह एक प्रोटेस्टेण्ट आचार है। कैथोलिक अर्थ में ऐसा कोई विचार नहीं पाया जाता है। कैथोलिक धर्म में एक गाथा प्रचलित है कि आदम और ईव ने स्वर्ग में अच्छे और बुरे ज्ञान के वृक्ष के फलों को खा लिया था। इस अपराध के दण्ड स्वरूप ईश्वर ने उन दोनों का स्वर्ग से बहिष्कार कर दिया और उसने यह दण्ड दिया कि अब से ईव और उसकी कन्यायें कष्ट से बच्चे जन्म देगी और आदम और उसके पुत्रों को एड़ी-चोटी का पसीना एक करके रोटी कमानी होगी। अतः स्पष्ट है कि कैथोलिक आचार में श्रम एक गुण नहीं है बल्कि एक दण्ड है। इसके विपरीत धर्म ही पूजा है या परिश्रम से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। ये आचार प्रोटेस्टेण्ट धर्म के हैं और यही देन उसकी पूँजीबाद के विकास में है।
2. प्रोटेस्टेण्ट धर्म की दूसरी देन है जो कि पूँजीबाद के विकास में सहायक सिद्ध हुई है। व्यवसायिक आचार इसका सम्बन्ध उस विश्वास से है जिसे कैल्विनवाद कहा जाता है। जिसके अनुसार प्रत्येक आत्मा व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् या तो स्वर्ग या नरक में चली जाती है और व्यक्ति के जीवन काल में कोई भी कार्य उनके भाग्य को नहीं बदल सकता। यदि एक व्यक्ति अपने कार्य या व्यवसाय में अधिकाधिक सफलता प्राप्त करता है तो वह इस बात का संकेत है कि उसकी आत्मा स्वर्ग में जायेगी। इस विश्वास के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति पर एक नैतिक दबाव डाला जाता है कि वह अपने पेशे या व्यवसाय में पूर्ण निष्ठा से कठोर परिश्रम करे और अधिकाधिक सफलता प्राप्त करे।

3. प्रोटेस्टेण्ट धर्म की तीसरी देन यह है कि धर्म के अन्तर्गत ऋण पर सूद वसूल

करने की मान्यता या स्वीकृति हो इसका अर्थ यह हुआ कि अपने धन का विनियोग धन जिसमें की सूद के रूप में प्राप्त धन भी सम्मिलित है।

4. प्रोटेस्टेण्ट धर्म की चौथी देन यह है कि इस धर्म ने शराब खोरी को बुरा बताया और ईमानदारी को ऊँचा पद प्रदान किया है। इस धार्मिक आचार के परिणाम स्वरूप लोगों में शराब पीकर आलसीपन करने की प्रवृत्ति घटती गई और कुशलता बढ़ी। शराब खोरी पर प्रतिबन्ध पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था में अत्यन्त महत्व इस कारण है कि इसके अन्तर्गत लोगों को मशीन पर काम करना पड़ता है। शराब पीकर हल चलाया जा सकता है। पशुओं को चराया जा सकता है। लेकिन मशीन चलाना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। इससे जानमाल का खतरा हो सकता है।

5. प्रोटेस्टेण्ट का अन्तिम प्रभाव इस रूप में है कि वह कैथोलिक आचार की भाँति अधिक छुट्टी के पक्ष में नहीं है। प्रोटेस्टेण्ट वादियों के लिए कर्म ही अराधना है। पूँजीवादी सफलता के लिए अधिक कार्य और कम छुटियाँ आवश्यक है।

मैक्स वेबर ने कन्फ्यूशियन, इस्लाम और यहूदी धर्म विश्लेषण किया है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सभी धर्मों के आर्थिक आचारों के अनुरूप ही समाज का आर्थिक तथा सामाजिक संगठन निश्चित हुआ है। वेबर के अनुसार हिन्दू धर्म में मुक्ति का अर्थ केवल कर्म के चक्र से मुक्ति है। मुक्ति तो समस्त सांसारिक मायाओं, इच्छाओं और अभिरूचियों से पूर्णयता अलग या दूर रखकर और ब्रह्मा से साक्षात् करके उसमें अपने को विलीन कर देने पर ही प्राप्त की जा सकती है।

सत्ता क सिद्धान्त

NOTES

सत्ता में सामान्य रूप से एक स्वामी होता है तथा दूसरा उसका अधीनस्थ। अधीनस्थ के लिये यह आवश्यक होता है कि वह स्वामी के आदेशों का पालन करे। वेबर के अनुसार “सत्ता वह स्थिति है जिसमें स्वामी की आज्ञा का पालन वह व्यक्ति या समूह करते हैं जो अपनी स्थिति को स्वामी को कारण मानते हैं।

शक्ति

जब स्वामी के आदेशों पर पालन होता है तब पालन करने वाला व्यक्ति या समूह किसी न किसी प्रेरणा से प्रभावित होता है। उसे इस बात की जानकारी रहती है कि आदेशों का पालन न करने पर उसे क्षति उठानी पड़ेगी। आदेशों में शक्ति का समावेश रहता है। जर्मन भाषा में वेबर ने शक्ति के लिए मेच्ट शब्द का प्रयोग किय है। वेबर के अनुसार— “सामाजिक सम्बन्धों में जब कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में हो कि दूसरे के प्रतिरोध करने पर भी अपने इच्छा की पूर्ति कर पाये ते यह शक्ति है।

सत्ता में शक्ति का समावेश होता है। वेबर के अनुसार समाज में सत्ता विशेष रूप से आर्थिक आधारों पर आधारित होती है। यद्यपि आर्थिक कारक सत्ता के निर्धारण में एकमात्र कारक नहीं कहा जा सकता है। सत्ता उन्हीं के हाथों में रहती है जिनके पास सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधन केन्द्रित हो। इसी सत्ता के आधार पर मजदूरों की स्वाधीनता खरीदी जाती है। यद्यपि इस प्रकार की सत्ता अब दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है और बहुत कुछ घट भी गई है। फिर भी आर्थिक क्षेत्र में निजी सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधन किसी वर्ग के लिए सत्ता के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कारण आज भी है। यह वर्ग

अपनी उस सत्ता के बल पर दूसरे वर्गों पर प्रभुत्व रखता है या उससे ऊँची स्थिति पर विराजमान होता है।

सत्ता के प्रकार और उनके वैध आधार

NOTES

सत्ता के संस्थागत होने के क्षेत्र में वेबर का विश्लेषण बहुत कुछ इसी दिशा में है।

फिर भी वेबर ने सत्ता के तीन बुनियादी प्रारूपों में भेद किया है जो इस प्रकार है—

1. **वैधानिक सत्ता**— राज्य द्वारा प्रतिपादित कुछ सामान्य नियमों के अनुसार अनेक पंद ऐसे होते हैं जिनके साथ एक विशिष्ट प्रकार की सत्ता जुड़ी रहती है अर्थात् वैधानिक सत्ता नियमों की एक ऐसी प्रणाली है जो निश्चित सिद्धान्तों के रूप में न्यायिक तथा प्रशासकीय रूप में प्रयुक्त होती है।
2. **परम्परात्मक सत्ता**— परम्परागत सत्ता में सामाजिक नियमों में स्पष्टता व निश्चितत वैधानिक सत्ता के सामाजिक नियमों की तुलना में कम होती है। इसी कारण परम्परागत सत्ता की कोई निश्चित सीमा नहीं होती है।
3. **करिश्माई सत्ता**— यह सत्ता न तो वैधानिक नियमों पर और न ही परम्परागत पर बल्कि कुछ करिश्मा या चमत्कार पर आधारित होती है। जिन व्यक्तियों में कोई विवाद करामात या चमत्कार दिखाने की वास्तविक य अनुमानित शक्ति होती है। वे इस प्रकार की सत्ता के अधिकारी होते हैं।

करिश्माई सत्ता के मुख्य लक्षण— वेबर ने करिश्माई सत्ता के निम्नलिखित लक्षण बताये हैं—

1. आयात—स्थिति
2. असाधारण शारीरिक और मानसिक लक्षणों से युक्त।

3. अस्थायी नेतृत्व

4. करिश्माई सत्ता महान भी बदनाम भी।
5. सामूहिक उत्तेजना।
6. क्रान्तिकारी दृष्टिकोण

करिश्माई सत्ता कुछ करिश्मा या चमत्कार पर आधारित होती है। इस प्रकार की शक्ति उन व्यक्तियों के पास होती है जिनके पास विलक्षण या चमत्कारिक सत्ता होती है।

नौकरशाही के सिद्धान्त

19वीं सदी में कई विचारकों ने आधुनिक नौकरशाही के विषय में अपने विचारों को प्रस्तुत किया था। मैक्स वेबर भी उनमें से एक है। “वास्तव में नौकरशाही” एक प्रकार संस्तराणात्मक संगठन होता है जिसका उद्देश्य बड़े पैमाने पर प्रशासनिक कार्यों को चलाने के काम में अनेक व्यक्तियों के काम को तर्कसंगत रूप में समन्वित करना होता है। समाजशास्त्री, नौकरशाही शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रकार की संरचना का बोध कराने के लिए करते हैं जिसके अन्तर्गत तर्कसंगत रूप में समन्वित असमानों का एक विशिष्ट संगठन होता है।

वेबर की माडल नौकरशाही

आधुनिक नौकरशाही के विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश में मौद्रिक अर्थव्यवस्था का समुचित विकास हो चुका है। ताकि कर्मचारियों को मुद्राओं के रूप में वेतन, पेंशन आदि दिया जा सके। साथ ही नौकरशाही के विकास के लिए प्रशासनिक विकास की आवश्यकता है। उसी प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और नौकरशाही का भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। साधारणतया बड़े-बड़े आधुनिक पूँजीवादी उद्योग-धन्धे स्वयं ही

नौकरशाही के उज्ज्वल सिद्धान्त है। मैक्स वेबर का यह भी कथन है कि शासन के प्रजातन्त्रीकरण के फलस्वरूप नौकरशाही का विकास हुआ है और इस दृष्टिकोण से प्रजातंत्र था नौकरशाही का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्रजातंत्र में सभी लोक कानून की दृष्टि में समान होते हैं और सबको यह अधिकार होता है कि वे ऊँचे से ऊँचे पद को प्राप्त कर सके। यह परिस्थिति नौकरशाही की उत्पत्ति व विकास के लिए सहायक सिद्ध हुई। राजनीतिक दलों का स्वरूप जैसे-जैसे प्रजातन्त्रीय बनता गया वैसे-वैसे उनकी संरचना भी नौकरशाही में बदलती गई।

पद्धतिशास्त्र

मैक्स वेबर के उक्त मत के पीछे जैसाकि पारसन्स ने लिखा है गहरी पद्धति शास्त्रीय अन्तर्दृष्टि है। वेबर का उद्देश्य ऐतिहासिक क्रम से सभी विशिष्ट तथ्यों का विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण करना नहीं है। बल्कि सबमें महत्वपूर्ण परिवर्तनीय तत्वों को निश्चित रूप से पृथक करना तथा परिवर्तनीय अवस्थाओं के अन्तर्गत उनकी क्रिया-कार्य या प्रभावों का अध्ययन करके उनके कार्यकरण महत्व को दर्शाना हो। जैसाकि आगे की विवेचना से स्पष्ट होगा। वेबर ने अपने इस अध्ययन में धार्मिक कारक को एक परिवर्तनीय तत्व माना है और उसका आर्थिक तथा अन्य सामाजिक घटनाओं पर जो कार्य-कारण का प्रभाव पड़ता है। उसका विश्लेषण तथा निरूपण करने का प्रयत्न किया है। वेबर का विश्वास है कि केवल कुछ अर्थों में समान और अन्यों में भिन्न उदाहरणों का अध्ययन करके ही किसी कारण के कार्य-कारण के प्रभाव का निर्णय सम्भव है। इसीकारण अपने किसी एक धर्म को नहीं, बल्कि कुछ अर्थों में महान विश्व-धर्मों को अपने अध्ययन में स्थान दिया। ऐसा करने का एक कारण यह भी है कि मैक्स वेबर ने यह अनुभव किया कि मार्क्स

की भाँति केवल ऐतिहासिक प्रक्रिया को और अधिक स्पष्ट कर देने से ही उसकी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। उसके लिए अन्य ठोस आधार ढूढ़ना पड़ेगा और यह आधार धार्मिक आधार है।

यद्यपि इस विषय में मार्क्स के विपक्ष में वेबर ने स्पष्ट शब्दों में ऐसा नहीं कहा, फिर भी उन्होंने यह अनुभव किया होगा कि इतिहास के मार्क्सवादी विश्लेषण पर भी बुनियादी आलोचना लागू हो सकती है। कुछ भी हो धार्मिक आचारों और सामाजिक व आर्थिक घटनाओं के बीच सम्बन्धों के अध्ययन में वेबर ने जिस प्रकार तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया है वह प्राकृतिक विज्ञानों की प्रयोगशाला में प्रयोग में लाई जाने वाली प्रत्यक्ष पद्धति में बहुत कुछ समान है।

वेबर का आदर्श प्रारूप और वर्स्टहेन पद्धति

आदर्श प्रारूप की अवधारणा मैक्स वेबर के समय तक जर्मनी में इस प्रकार के विद्वानों का एक कट्टर सम्प्रदाय विकसित हो गया था जो इस बात पर विश्वास करता था कि सामाजिक घटनाओं का प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति के अनुसार विचार नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में वेबर का मत है कि तर्क संगत रीति से सामाजिक घटनाओं से कार्यकरण सम्बन्धों को तब तक स्पष्ट नहीं किया जा सकता। जब तक घटनाओं को पहले समानताओं के आधार पर कुछ सैद्धान्तिक श्रेणियों में बाट न लिया जाये। ऐसा करने पर हमें आदर्श टाइप घटनायें मिल जाये। इस दृष्टिकोण से सामाजिक घटनाओं की तार्किक संरचना में बुनियादी पुर्ननिर्माण की आवश्यकता है। पुर्ननिर्माण के इस कार्य में मैक्स वेबर ने अपने आदर्श प्रारूप के प्रसिद्ध सिद्धान्त को विकसित किया। मैक्स वेबर ने कहा कि

समाजशास्त्रियों को अपनी उपकल्पना का निर्माण करने के लिए आदर्श अवधारणाओं को चुनना चाहिये।

NOTES

“आदर्श प्रारूप न तो औसत प्रारूप हो न ही आदर्शात्मक, बल्कि वास्तविकता के कुछ विशिष्ट तथ्यों के विचारपूर्वक चुनाव तथा सम्मिलन द्वारा निर्मित आदर्शात्मक मान है।

आदर्श शब्द का कोई भी सम्बन्ध किसी प्रकार के मूल्यांकन से नहीं है। विश्लेषणात्मक प्रयोजन के लिए कोई भी प्रयोजन वैज्ञानिक किसी भी तथ्य या घटना के आदर्श प्रारूप का निर्माण कर सकता है। चाहे वे वेश्याओं से सम्बन्धित हो या धार्मिक नेताओं से इस वाक्य का यह पूर्ण अर्थ नहीं है कि केवल पैगम्बर या दुराचारी ही आदर्श हो या उन्हें जीवन के आदर्श तरीकों का प्रतिनिधि मानकर अनुकरण करना चाहिये। वास्तव में सामाजिक घटनाओं का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत और जटिल हो इस कारण अध्ययन काल तथा घटनाओं के विश्लेषण में सुविधा और यर्थाथता के लिए यह आवश्यक है कि समानताओं के आधार पर विचारपूर्वक तथा तर्क संगत ढंग से कुछ वास्तविक घटनाओं या व्यक्तियों को इस प्रकार चुन लिया जाये जो कि उस प्रकार की समस्त घटनाओं या व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व कर सके। इस प्रकार के चुनाव और सम्मिलन द्वारा जिस टाइप का निर्माण होता है उसे आदर्श प्रारूप कहा गया है। यह आदर्श इस अर्थ में नहीं है कि इसके चुनाव या निर्माण में किसी आदर्शात्मक विचार अनुमान या पद्धति का अनुशरण किया गया है। यह आदर्श इस अर्थ में है कि यह एक विशिष्ट श्रेणी या टाइप है जो कि इस प्रकार की सम्पूर्ण घटना या समस्त व्यवहार या क्रिया की वास्तविकता को व्यक्त करता है।

मैक्स वेबर इस बात पर बल देते हैं कि सामाजिक वैज्ञानिकों को केवल उन्हीं अवधारणाओं को अध्ययनकाल में प्रयोग करना चाहिये जो कि तर्कसंगत ढंग से नियंत्रित सन्देश रहित तथा प्रयोग सिंह ही वैज्ञानिक पद्धति की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसके बिना सामाजिक क्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण तथा निरूपण सम्भव नहीं है।

1. इस आदर्श प्रारूप का निर्माणकर्ता की क्रिया के इच्छित अर्थ के अनुसार किया जाता हो। दूसरे शब्दों में आदर्श प्रारूप में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जो अर्थ एक क्रिया का है। वह उतना महत्वपूर्ण नहीं है। जितना कि उस क्रिया का वह अर्थ जो कि उसे करने वाला लगाता है। जर्मन भाषा में इसे वर्स्टहेन पद्धति कहा जाता है।
2. आदर्श प्रारूप सब कुछ का वर्णन या विश्लेषण नहीं है। यह तो एक सामाजिक घटना या क्रिया के अन्य महत्वपूर्ण पक्षों का निरूपण है और इसलिए आदर्श प्रारूप में कुछ तत्वों को उनके विरुद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है और कुछ को जान-बूझकर छोड़ दिया जाता है। इससे आदर्श प्रारूप में कुछ अनिश्चित या अस्पष्टता नहीं आ पाती और वह अधिकाधिक यथार्थ बन जाता है।
3. मैक्स वेबर वे इस जोर हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि आदर्श प्रारूप केवल मात्र ठोस ऐतिहासिक समस्याओं के विश्लेषण के हेतु साधन या उपकरण में प्रयोग करना चाहिये। आदर्श प्रारूप को ढूढ़कर निकालना ही सामाजिक विज्ञान का अन्तिम लक्ष्य नहीं है। मैक्स वेबर का यह विश्वास है कि सामाजिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार के स्थिर सिद्धान्त की प्रणाली सम्भव नहीं है। चूंकि सामाजिक समस्यायें परिस्थितियों के अनुसार भिन्न होती हैं और उन समस्याओं का प्रारूप अनुसंधानकर्ता के विशिष्ट दृष्टिकोण से सम्बन्धित होता है। इसलिए उनके समाधान के लिए अवधारणाओं अर्थात् आदर्श प्रारूपों को अन्तिम मान लेना उचित न होगा।

महत्वपूर्ण परीक्षाप्रयोगी प्रश्न

1. मैक्स वेबर के समाजशास्त्र सम्बन्धी विचारों की विवेचना कीजिये?
2. मैक्स वेबर के पद्धतिशास्त्र की विवेचना कीजिये?
3. मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप की विवेचना कीजिये?
4. मैक्स वेबर के सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त की विवेचना कीजिये?
5. वेबर के सत्ता की अवधारणा की विवेचना कीजिये?
6. मैक्स वेबर के नौकरशाही सम्बन्धी विचारों की विचारों कीजिये?
7. पूँजीवाद के विकास के सम्बन्ध में वेबर के विचारों की विवेचना कीजिये?

NOTES

NOTES

परेटो की बौद्धिक पृष्ठभूमि

इस प्रख्यात अर्थशास्त्री तथा समाजशास्त्री का जन्म 15 जुलाई 1848 को पेरिस में हुआ था, उनकी माता पेरिस की तथा पिता जेनेवा के नागरिक थे। उनके पिता मैजिनी के प्रशंसक तथा समर्थक थे। उनका अधिकतर समय इटली से बाहर ही बीता। इसी समय परेटो का जन्म हुआ था। इसीलिए उनकी प्रारम्भिक शिक्षा—दीक्षा पेरिस में हुई। सन 1858 में इटली की सरकार की नीति बदली और परेटो परिवार को पुनः इटली लौटने का अवसर मिला। यहीं पर परेटो सन 1893 तक रहे। फिर आप फ्लोरेन्स छोड़कर स्विटजरलैण्ड चले गये। परेटो की शिक्षा—दीक्षा पहले तो ट्यूरिन विश्वविद्यालय के इन्स्ट्रीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी तथा बाद में पॉलीटेक्निकल स्कूल में हुई।

शिक्षा समाप्त करने के पश्चात परेटो इटालियन रेलवे में इंजीनियर के पद पर काम करने लगे और फिर 16 वर्ष तक एक लोहा उद्योग में मैनेजिंग—डायरेक्टर के पद पर काम किया। इंजीनियर के पद पर काम करते समय ही अपनी विशेष रुचि के कारण परेटो अपने समाज की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में पत्रिकाओं में लेख लिखा करते थे। अर्थशास्त्र में आपकी रुचि उत्पन्न करने का श्रेय रोम विश्वविद्यालय के राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर पैटालिलोनी को था।

अप्रैल 1893 में पैतालीस वर्ष की आयु में लैशिन विश्वविद्यालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र के असाधारण व प्रोफेसर के पद पर परेटो की नियुक्ति हुई। सन 1897 से लेकर 1898 तक आपने राजीतिक अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र दोनों ही विषयों को पढ़ाया।

सन 1990 में परेटो बीमार पड़े और लगातार चार वर्ष तक बीमार ही बने रहे। अपनी बीमारी से पहले आपकी प्रथम कृति *coursed economic poloitiqale* (1996–97) प्रकाशित हुई थी।

NOTES

(तर्कशास्त्र) तर्कसंगत और अतर्कसंगत क्रियायें—

परेटो ने अपने अध्ययन में समाज में पाई जाने वाली मानवीय क्रियाओं का वर्गीकरण दो भागों में किया है—

1. तर्कसंगत क्रियायें
2. अतर्कसंगत क्रियायें

परेटो का कथन है कि प्रत्येक सामाजिक घटना के दो पहलू हो सकते हैं—

1. जैसा की वास्तव में है।
2. जैसी कि वह किसी शक्ति विशेष के मस्तिष्क में अंकित है। प्रथम को परेटो ने वस्तुनिष्ठ तथा द्वितीय को व्यक्तिनिष्ठ कहा है। परेटो के अनुसार वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ आधारों का भेद महत्वपूर्ण, उपयोगी तथा उचित है। फिर भी इन दोनों के बीच कोई दृढ़ विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं है।

परेटो ने वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ आधारों का और भी स्पष्टीकरण इस प्रकार किया कि प्रत्येक सामाजिक व्यक्तिगत क्रिया के पक्ष होते हैं—

1. लक्ष्य
2. साधन।

हम किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ साधनों का प्रयोग करते हैं। परेटो के

मतानुसार वे कार्य, जिनका आधार वस्तुनिष्ठ है, तर्कसंगत क्रियायें हैं और वे क्रियायें जिनका कि आधार व्यक्तिनिष्ठ है। तर्कसंगत है। तर्कसंगत क्रियायें हैं।

इस प्रकार परेटो के अनुसार मानवीय क्रियायें तर्कसंगत हो सकती हैं और अतर्कसंगत भी। तर्कसंगत क्रिया ही वास्तव में प्रमाणित होती है। क्योंकि इस प्रकार की क्रियायें निरीक्षण और अनुभव के क्षेत्र में अन्तर्गत होती हैं। ये इस अर्थ में भी वास्तविक या प्रमाणित होती है कि ये सभी भी काल्पनिक नहीं होती न ही ये अनुमान और अतार्किक आधारों पर आधारित होती हैं। इनका आधार तो वास्तविक तथ्य होता है और इस कारण इनकी परीक्षा वास्तविक अनुभव, निरीक्षण या प्रयोग द्वारा ही हो सकती है। इसीलिए तर्कसंगत क्रियायें विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। जबकि अतर्कसंगत क्रियायें काल्पनिक होते हैं तथा निरीक्षण तथा अनुभव सिद्ध न होने के कारण विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आती। यद्यपि इनका अध्ययन विज्ञान द्वारा होता है।

विशिष्ट चालक

यदि मानव व्यवहार को विश्लेषित करे तो उस व्यवहार के दो पक्ष स्पष्ट हो सकते हैं। एक तो अपेक्षाकृत अधिक स्थिर पक्ष होता है और दूसरा अस्थिर या परिवर्तनशील पक्ष मानव व्यवहार के स्थिर पक्ष को परेटो ने विशिष्ट चालक और परिवर्तन पक्ष को भ्रान्त तर्क कहा है।

मानव व्यवहार के निर्धारण में प्रेरणाओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। श्री परेटो का विशिष्ट चालक विशिष्ट प्रकार की प्रेरणायें हैं। ये विशिष्ट चालक प्रेरणाओं की अपेक्षा अधिक स्थिर होते हैं और इसी कारण मानव व्यवहार को नियंत्रित व संचालित करने में

इनका पर्याप्त योगदान होता है। परेटो की इस व्याख्या से स्पष्ट है कि विशिष्ट चालक न तो मूल प्रवृत्ति है और न ही भावना इस विशिष्ट चालकों के सम्बन्ध में परेटो ने जो कुछ बताया है। उससे इनका अधिक से अधिक स्पष्टीकरण यह हो सकता है कि “विशिष्ट चालक मूल प्रवृत्तियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति है।

विशिष्ट चालकों की विशेषताएं

1. विशिष्ट चालक अपने इच्छाकृत अधिक होते हैं।
2. विशिष्ट चालक स्वयं भूल प्रवृत्ति या भावना नहीं होती। वरन् इनकी अभिव्यक्ति होती है।
3. विशिष्ट चालकों में तार्किक तत्व नहीं होते और न ही तार्किक आधार पर इनकी व्याख्या की जा सकती है।

विशिष्ट चालकों के प्रकार

परेटो ने विशिष्ट चालकों को छः श्रेणियों में विभाजित किया है—

1. सम्मिलन के विशिष्ट चालक— सम्मिलन के विशिष्ट चालक परस्पर समान या विरोधी तत्वों को मिलने वाली प्रेरणायें इस प्रकार के विशिष्ट चालक के प्रभाव के कारण होने वाले परस्पर समान या विरोधी तत्वों या चीजों के सम्मिलन से अच्छे उदाहरण स्पष्ट में देखी गई चीजों के आधार पर हमारी विश्वास से दिये जा सकते हैं। परस्पर समान चीजों का मेल हम इस प्रकार देते हैं कि तितली देखने में सुन्दर और प्यासी होती है। इसलिए हम विश्वास करते हैं कि सपने में तितली देखना आने वाले सुख घोतक है। इसके विपरीत परस्पर विरोधी चीजों का मेल हम इस प्रकार करते हैं। जैसे—सपने सेना देखना अधिक हानिक का घोतक होता है।

2. समूह के स्थायित्व के विशिष्ट चालक— ये वो प्रेरणाये हैं जो मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों, मनुष्य एवं स्थानों के बीच सम्बन्धों तथा जीवित और मृत व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों को स्थायित्व प्रदान करते हैं। ये विशिष्ट चालके मनुष्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तिरित होती है। इनके प्रति लोगों के दिलों में आदर भाव होता है। इन्हीं विशिष्ट चालकों से चलित होकर हम अपने परिवार नगर देश या प्रजाति के या इनके सदस्यों के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखते हैं। उदाहरण किसी महापुरुष से अपना सम्बन्ध बनाये रखने के लिए उनकी समाधि स्थल पर जाना फूल, मालायें चढाना केवल एवं उनकी जयन्तियाँ बनाना आदि है।
3. बाह्य क्रियाओं द्वारा भावनाओं के अभिव्यक्ति के विशिष्ट चालक—इस श्रेणी के अन्तर्गत अनेक विशिष्ट चालकों को सम्मिलित किया जो कि हमें अपनी भावनाओं को बाह्य क्रियाओं द्वारा प्रदर्शित करने को प्रेरित करते हैं। उदाहरण हमारी राष्ट्रीयता की भावना अपने को दासता के बन्धन से मुक्त करने के लिए हमें राजनीतिक आन्दोलन या विद्रोह करने को प्रेरित करती है। या फिर किसी मन्दिर, मस्जिद में जाकर धर्म से सम्बन्धित भावनाओं से अभिव्यक्ति पूजा पाठ प्रार्थना आदि बाह्य क्रियाओं के रूप में करते हैं।
4. सामाजिकता से सम्बन्धित विशिष्ट चालक— इस श्रेणी के अन्तर्गत विशिष्ट चालक सम्मिलित किये जाते हैं जो कि मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाते हैं। ये विशिष्ट चालक हमें अपने व्यवहारों को अन्य व्यक्तियों के समान बनाने की प्रेरणा देते हैं और इसी उद्देश्य से प्रत्येक व्यक्ति जिस समूह का वह सदस्य होता है उसकी

नीति को अपनाता है। उदाहरण— दया, क्रूरता, आत्म-बलिदान, श्रेष्ठता अथवा नवीनता की भावना तथा हीनता की भावना आदि इस श्रेणी के विशिष्ट चालक हैं।

5. **व्यक्तित्व के संगठन के विशिष्ट चालक**— इस श्रेणी के अन्तर्गत वे प्रेरणायें आती हैं जो कि व्यक्तित्व के विभिन्न तत्वों या लक्ष्यों को संगठित या संयोजित करती है। इन्हीं विशिष्ट चालकों के कारण हम उन प्रयत्नों का विरोध करते हैं। जो कि सामाजिक या व्यक्तित्व सम्बन्धी सन्तुलन को नष्ट करने वाले होते हैं यही विशिष्ट चालक हमें व्यक्तित्व के विभिन्न और बिखरे हुए तत्वों को फिर से बटोरने और व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने की प्रेरणा देते हैं। उचित या अनुचित का ज्ञान हमें इन्हीं चालकों से मिलता है।

6. **काम—सम्बन्धी विशिष्ट चालक**— इस श्रेणी के अन्तर्गत वे प्रेरणायें आती हैं जो कि काम वासनाओं की त्रस्ति से सम्बन्धित होती है। ये विशिष्ट चालक प्रायः जटिल रूपों में मिलते हैं और कभी—कभी इनको नियंत्रित करने के लिए समाज को यौन सम्बन्धी निषेधों को लागू करना पड़ता है। इसी की अभिव्यक्ति विवाह क्रिया के रूप में होती है।

परेटो की भ्रान्त तर्क की अवधारणा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी के रूप में वह अनेक प्रकार से क्रिया या व्यहार करता है। एक व्यक्ति जो कुछ करता है यह सोचकर ही करता है कि वह ठीक या उचित कर रहा है। परन्तु हो सकता है कि दूसरे लोग या समूह उसके कुछ कार्यों को उचित या ठीक न माने ऐसी अवस्था में व्यक्ति को अपनी सफाई देनी होती है कि उसका कोई भी कार्य या व्यवहार अनुचित नहीं है। अपने कार्य या व्यवहार के औचित्य

NOTES

को प्रमाणित करने के लिए व्यक्ति अपनी प्रकृति एवं आदर्शों के अनुसार अनेक युक्तियाँ या

सफाइयाँ पेश की जाती है। इसी को परेटो ने भ्रान्त तर्क कहा है।

NOTES

भ्रान्त तर्क तार्किक हो या नहीं, चाहे वे अनुभव सिद्ध हो या नहीं और चाहे उनकी सामाजिक उपयोगिता हो या नहीं ये भ्रान्त तर्क इस अर्थ में भ्रान्त है कि ये सामान्य मत के विरुद्ध अतर्क संगत तथा अ प्रयोग सिद्ध आधारों पर आधारित होते हैं। इस दृष्टि से भ्रान्त तर्क विशिष्ट चालकों से कहीं अधिक अस्थिर विविध परिवर्तनीय तथा परस्पर विरोधी होते हैं।

परेटो के अनुसार कोई भी समाजशास्त्री चूँकि घटनाओं की व्याख्या या विश्लेषण में उन भ्रान्त तर्कों को किसी भी रूप में स्वीकार करता या मानता देखता है। विज्ञान समस्त निष्कर्षों पर कदापि नहीं रुक सकता। ऐसे निष्कर्ष सदैव ही गलत अतर्क संगत तथा अवैज्ञानिक होते हैं।

परिभाषा

फेयर चाइल्ड के अनुसार— परेटो के मतानुसार भ्रान्त तर्क क्रियाओं का वह व्यापक क्षेत्र हो जिनके द्वारा मनुष्य व्यवहार की तार्किकता या औचित्य के सम्बन्ध में स्वयं अपने तथा अपने साथियों के समझने व विश्वास दिलाने का प्रयत्न करता है। इन भ्रान्त तर्कों को उनकी सत्यता या असत्यता के आधार पर स्वीकार या अस्वीकार इस कारण किया जाता है कि वे हमारे सन्देह और भावनाओं को उचित या अनुचित प्रतीत होते हैं।

उदाहरण— विज्ञापन फैशन आदि इसी प्रकार के भ्रान्त तर्कों पर आधारित है। परेटो ने भ्रान्त तर्क को चार वर्गों में बाँटा है।

1. घोषणायें— इस वर्ग के तर्क से परेटी का तात्पर्य उन साधारण घोषणाओं या विज्ञान की भाँति अनुभव तथा परिमाणात्मक तथ्यों पर आधारित नहीं होते हैं। फिर भी इनकी पुष्टि में वास्तविक अथवा काल्पनिक तथ्यों को प्रस्तुत किया जा सकता है। ये कथन इतनी दृढ़ता और जोरदार शब्दों में व्यक्त किये जाते हैं कि लोगों का उससे सहज ही विश्वास उत्पन्न हो जाये। घोषणा का प्रभाव इस बात पर निर्भर है कि उसे कितनी बार दोहराया जाता है कि बिल्कुल ही झूठ कथन सच प्रतीत होने लगता है। यदि उसे बार-बार दोहराया जाये।

2. अधिकार या अधिसत्ता— इस श्रेणी के अन्तर्गत वे भ्रान्त तर्क आते हैं जिनके पीछे कोई शक्ति अथवा सत्ता होती है। किसी कारणवश जब एक व्यक्ति एक क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो जाता है जब गलती से लोग उसे दूसरे क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित मान लेते हैं जबकि वास्तव में उसे उस क्षेत्र के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं होता फिर भी उसकी प्रतिष्ठा के कारण उसके कथनों को लोग सहज में ही मान लेते हैं। यह सत्य केवल व्यक्तिगत न होकर ईश्वरीय या सामाजिक शक्ति भी हो सकती है।
उदाहरण— अनेक धार्मिक नियम, प्रथा, परम्परा आदि की अभिव्यक्ति इतनी शक्तिशाली होती है कि वह मानव व्यवहार को अपने आप नियंत्रित कर सकती है।

3. भावना या सिद्धान्त अनुरूप— इस श्रेणी के अन्तर्गत उन भ्रान्त तर्कों को सम्मिलित करते हैं जो किसी कार्य के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए एक व्यक्ति प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के तर्क कुछ भावनाओं पर आधारित होते हैं और उसी आधार पर कार्य को उचित मान लिया जाता है। इस प्रकार की भावनायें जिन पर कि भ्रान्त तर्क आधारित होता है। व्यक्ति से विधान से या ईश्वर से सम्बन्धित हो

सकती है। उदाहरण— किसी काम को करके कोई यह प्रस्तुत करता है कि उसने यह काम राष्ट्रीय हित के लिये किया हो। उसी प्रकार नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, वैधानिक और ऐसे कितने ही सैद्धान्तिक नियम और सिद्धान्त बने हुए हैं जो भावनाओं पर आधारित हैं।

4. मौखिक प्रमाण— इस श्रेणी के अन्तर्गत वे मिथ्या तर्क सन्देह मूलक और द्रवी अर्थक बातें आती हैं जो वास्तविक तथ्यों के अनुरूप नहीं होती लेकिन जिन्हें व्यवहार या आचरण का आचरण का औचित्य सिद्ध करने के लिए उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष

इसलिये परेटो इस मत से सहमत नहीं है कि भ्रान्त तर्क समाज के लिये बिल्कुल ही अनुपयोगी है। या हानिकारक होते हैं। परेटो ने अपने अध्ययन में इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि अनेक भ्रान्त तर्क ऐसे भी हैं जो सामाजिक व्यवस्था में एकता बनाये रखने में उपयोगी सिद्ध हुए हो जबकि कितने ही सत्य ऐसे भी हैं जो सामाजिक व्यवस्था या संगठन के लिए घातक सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार परेटो के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक सत्य उपस्थित है और प्रत्येक अंधविश्वास और हानिकारक है।

परेटो की अतार्किक क्रियाओं की भूमिका

परेटो का विचार है कि सभी स्थानों पर और प्रत्येक युग में तर्क संगत क्रियाओं की अपेक्षा तर्कहीन क्रियाओं का अधिक महत्व रहा है। मनुष्य अपने समान जीवन में कल्पना और अनुमान से अधिक काम लेता रहा है। अर्थात् उसकी अधिकांश क्रियायें तर्कहीन होती हैं। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति या समाज अपनी तर्कहीन क्रियाओं को अनेक युक्तियों के आधार पर तर्कसंगत सिद्ध करने की चेष्टा करता है। अपने इस प्रयास में वह निम्न पद्धतियों का

सहारा लेता है। जिसके द्वारा तर्कहीन क्रियाओं की व्याख्या की जाती है। ये निम्नलिखित हैं—

NOTES

1. वे सिद्धान्त जो वैषयिक वास्तविकता से रहित होते हैं ये ध्यान देने योग्य नहीं है। ये पूर्व निर्णय पर आधारित हैं। ये एक व्यक्ति के द्वारा दूसरों को धोखा देने की चाल है।
2. वे सिद्धान्त या विधियाँ जो कम और अधिक वैषयिक वास्तविकता से पूर्ण मानी जाती हैं। ये प्रत्यक्ष तथा पूर्ण सत्य के रूप में स्वीकृत की जाती है। जो आंशिक रूप से काल्पनिक होती है। इनमें ईश्वर अथवा अभूत तथ्यों का मानवीय कारण किया जाता है।
3. ये क्रियायें अप्रत्यक्ष आंशिक सत्य के रूप में मानी जाती हैं। अपूर्व निरीक्षण पर आधारित होती है। जैसे— पौराणिक कथा को ऐतिहासिक तथ्य मानकर ऐतिहासिकता में काल्पनिक तथ्यों का प्रवेश हो जाता है।
4. अतार्किक क्रियाओं के सिद्धान्त प्रतीक मात्र होते हैं।
तर्कहीन क्रियाओं को समझने के लिए परेटो ने समाज में प्रचलित निषेध का उदाहरण दिया है। इन निषेधों को उचित सिद्ध करने के लिए भिन्न-भिन्न युक्ति और तर्क दिये जाते हैं। कभी इन्हें देवता या कभी ईश्वर की व्याख्या कहा जाता है। किन्तु यह तर्क या व्याख्या अनुभव सिद्ध न होने के कारण निषेध को तर्क संगत क्रिया के रूप में प्रमाणित नहीं कर सकते। निषेध तो वास्तव में एक विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति का परिणाम है। किसी विशिष्ट क्रिया के प्रति किसी समूह के मन में घृणा या विरोध का भाव पैदा हो जाता है। जिसका कोई वास्तविक उद्देश्य या कोई परीक्षित कारण नहीं होता किन्तु इस

क्रिया को निषेध के योग्य प्रमाणित करने का प्रयत्न भिन्न-भिन्न तरीकों के द्वारा किया जाता है।

NOTES

तर्कहीन क्रियाओं की बौद्धिकता और महत्व को सिद्ध करने के लिए परेटो ने मानवीय क्रियाओं को दो भागों में बँटा है। एक तो वे क्रियायें जो अपेक्षाकृत स्थिर होती हैं और दूसरी वे जो परिवर्तनशील होती हैं स्थिर क्रियाओं को परेटो ने अवशेष या विशिष्ट चालक पर आधारित बताया हो और परिवर्तनशील कार्यों को अपने भ्रान्त तर्क कहा है। अवशेष वे विशेष प्रेरणायें हैं जो मानव व्यवहार को नियंत्रित और संचालित करते रहते हैं। भ्रान्त तर्क वे कार्य हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपनी क्रियाओं का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। अर्थात् अपनी और दूसरों की दृष्टि में उन क्रियाओं को तर्क संगत सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। अवशेष और भ्रान्त तर्क अनुभव प्रयोग और परीक्षण पर आधारित वास्तविक तथ्य नहीं होते किन्तु सामाजिक अवस्था में एकता बनाये रखने के उद्देश्य से इसका समाज में महत्व है।

परेटो के अनुसार तर्कहीन क्रियायें निरर्थक हानिकारक या व्याधिकीय नहीं होती किन्तु वह इस बात को स्पष्ट करती है कि तर्कहीन क्रियायें महत्वपूर्ण बन सकती हैं। क्योंकि विज्ञान के अन्तर्गत वही क्रियायें शामिल की जा सकती हैं। जो अनुभव सिद्ध और तर्क संगत हो अतः समाजशास्त्रीय अध्ययन में तर्कहीन क्रियाओं को शामिल नहीं किया जा सकता है। केवल तर्क संगत क्रियाओं अर्थात् प्रयोग और परीक्षण के योग और तथ्यों के अध्ययन तक ही समाजशास्त्र का क्षेत्र सीमित रहना चाहिये।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि परेटो के लिए क्रिया की मुख्य विशेषता तर्क के साथ उसका सम्बन्ध या इसका अर्थ यही है कि प्रत्येक क्रिया का आधार तर्क लिये हुए होता है। लेकिन इस सन्दर्भ में यह आवश्यक नहीं है कि क्रिया का यह तार्किक आधार प्रयोग सिद्ध हो कभी-कभी क्रिया को करने वाले उस क्रिया तार्किक आधार अपने ढंग से ढूढ़कर क्रिया का औचित्य प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं और क्रिया का यह तार्किक आधार प्रयोग सिद्ध भी हो सकता है। कुछ भी हो परेटो ने मानवीय क्रियाओं को दो भागों में विभाजित करके समझाने में सफलता प्राप्त की है।

अभिजात वर्ग का परिभ्रमण

परेटो ने सामाजिक व्यवस्था एव सन्तुलन के निर्धारण में अभिजात वर्ग को एक प्रमुख कारक माना है। सामाजिक विचारधारा के क्षेत्र में अभिजात वर्ग की आवधारणा परेटो की अत्यन्त महत्वपूर्ण देन मानी जाती है। परेटो का मत है कि प्रत्येक समाज में सामाजिक विभिन्नता एवं सामाजिक संस्तरण पाया जाता है। ये सामाजिक विभिन्नता और संस्तरण सदैव स्थिर नहीं होता। बल्कि परिवर्तन होता रहता है जिसके फलस्वरूप समाज में सामाजिक परिवर्तन होता है। परेटो के अनुसार यह परिवर्तन रेखीय न होकर चक्रीय होता है। इस चक्रीय सामाजिक परिवर्तन का कारण परेटो ने सामाजिक विभिन्नता से उत्पन्न अभिजात वर्ग के परिभ्रमण को मानता है। इस प्रकार परेटो का अभिजात वर्ग एवं सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त।

1. सामाजिक विभिन्नता
2. सामाजिक संस्तरण

3. अभिजात वर्ग परिमण तीन भागों में विभक्त करके स्पष्ट किया जा सकता है।

NOTES

मानवीय विभेदीकरण एवं सामाजिक विभिन्नता

परेटो के समाजशास्त्र को समाज व्यवस्था एवं सन्तुलन का समाजशास्त्र कहा जाता है। परेटो के अनुसार प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करने लगा उसमें सन्तुलन एवं सामन्जस्य स्थापित करने के लिए उस समाज के व्यक्तियों में पायी जाने वाली विधिता एवं विभिन्नता का बहुत महत्व होता है। समाज के सभी व्यक्तियों में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं नैतिक दृष्टि से एक समान गुण नहीं होते हैं। उनमें पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। मनुष्यों में पायी जाने वाली यह विभिन्नता एवं भिन्नता समाज के वर्गों में भी विभिन्नता उत्पन्न कर देती है। समूह एवं वर्ग की यह भिन्नता सामाजिक असमानता को जन्म देती है। जिससे सामाजिक संस्तरण उत्पन्न होता है। परेटो का कहना है कि मानव इतिहास में सदैव से ही असमानता एवं संस्तरण विद्यमान रहा है। इसीलिए परेटो समानता पर आधारित समाजवाद प्रगति, न्याय, स्वतंत्रता, स्वशासन आदि सिद्धान्तों की कटु आलोचना करता है। वह इसे हास्यास्पद विषय मानता है। प्रजातंत्र जिसे सभी संस्कारों से उत्तम माना जाता है। परेटो इससे सहमत नहीं है। परेटो प्रजातंत्र को धनवानों का राजतंत्र मानता है। इस प्रकार संस्कारों में बड़े-बड़े घसोट भ्रष्टाचार और जनसाधारण की हालत बड़ी दयनीय होती है।

परेटो ने अपनी पुस्तक मार्झण्ड एण्ड सोसाइटी में समाज की विविधता एवं असमानता का कारण विशिष्ट चालकों को माना है। परेटो के अनुसार समस्त मानव व्यवहार एवं मानवीय क्रियाओं का कारण विशिष्ट चालक है। ये विशिष्ट चालक सभी

मनुष्यों में एक समान नहीं होते। वरन् पर्याप्त भिन्नता लिये होते हैं। परेटो ने विविधता विभिन्नता एवं असमानता उत्पन्न करने में दो प्रमुख विशिष्ट चालकों का उल्लेख किया है—

NOTES

1. सम्मिलन के विशिष्ट चालक

2. समूह के स्थायित्व के विशिष्ट चालक

परेटो के अनुसार कुछ मनुष्यों में सम्मिलन के विशिष्ट चालक प्रबल होते हैं तथा कुछ के समूह में स्थायित्व की प्रधानता होती है। परेटो ने इन्हीं दो प्रकार के विशिष्ट चालकों के आधार पर मनुष्यों को दो समूह या वर्गों में विभाजित किया है और समाज में सामाजिक संस्तरण की व्याख्या की है।

सामाजिक संस्तरण एवं अभिजात वर्ग

प्रत्येक समाज में समानता ऊँच—नीच का एक संस्तरण पाया जाता है। परेटो के अनुसार विशिष्ट चालकों के कारण समाज के मनुष्य दो वर्गों में विभक्त हो जाते हैं। समान्यता एक वर्ग को उच्च वर्ग और दूसरे को निम्न वर्ग। उच्च वर्ग में सम्मिलन के विशिष्ट चालक के गुण होते हैं। जिसके कारण इस वर्ग के पास सत्ता होती है और इसी के आधार पर यह वर्ग प्रमुखता शासन संचालन का कार्य करता है। यह वर्ग समाज का प्रभावशाली वर्ग है। इसके अधिकतर सदस्य बुद्धिमान, चतुर, कुशल, धनी, सामर्थ्यवान एवं शक्तिशाली होते हैं। इनमें नवीनता एवं परिवर्तन शीलता के गुण होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण इस वर्ग के लोग उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होते हैं और समाज में नियंत्रण बनाये रखते हैं। परेटो ने इसी वर्ग को अभिजात वर्ग कहा है। इसी वर्ग को अभिजन वर्ग, विशिष्टजन वर्ग, सम्रान्तजन्य श्रेष्ठजन आदि हिन्दी नामों से भी जाना जाता है। परेटो ने इन्हीं कुलीन वर्ग भी कहा है।

इसके विपरीत निम्नवर्ग में समूह के स्थायित्व के विशिष्ट चालक के गुण होते हैं।

जिसके कारण यह समाज के शक्तिहीन, असमर्थ, प्रभावहीन, निर्धन एवं शासित लोग होते हैं। इस वर्ग को सामन्यतः सेवक जनः सामान्यजन के नाम से जानते हैं।

इस प्रकार परेटो के अनुसार प्रत्येक समाज इलीट एवं नान इलीट के रूप में दो सामाजिक वर्गों में विभक्त रहता है। अभिजात वर्ग सामाजिक दृष्टि से उच्च प्रतिष्ठित प्राप्त आर्थिक दृष्टि से धनी एवं शोषक और राजनैतिक दृष्टि से शासक होता है। जबकि नान इलीट निम्न प्रतिष्ठा प्राप्त निर्धन शोषित एवं शासित होता है। परेटो के अनुसार प्रत्येक समाज में अभिजात वर्ग की संख्या केवल 4 प्रतिशत होती है। अतः ये अल्पसंख्यक वर्ग है। जबकि नान इलीट शेष 96 प्रतिशत होता है और वे बहुसंख्यक वर्ग है।

परेटो ने अभिजात वर्ग को भी दो भागों में विभक्त किया है— 1. शासक अभिजात 2. शोषित अभिजात वर्ग।

शासक अभिजात वर्ग में वे लोग आते हैं जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शासन से सम्बन्धित होते हैं। समाज के प्रतिष्ठित पदों पर उदासीन होते हैं तथा महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसे राजनीतिक दलों के नेता, नौकरशाह एवं मिलिट्री ऑफीसर से अशासक अभिजात वर्ग में वे लोग आते हैं जो प्रत्यक्ष शासन व्यवस्था में भाग नहीं लेते। लेकिन समाज में विशिष्ट गुणों के कारण उनकी उच्च स्थिति होती है और शासन—प्रशासन को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। जैसे साठ धार्मिक नेता, बुद्धजीवी शिक्षा विधि, वैज्ञानिक कलाकार आदि।

परेटो ने अपनी पुस्तक माइन्ड एण्ड सोसाइटी में लिखा है कि अभिजात वर्ग के लोग अत्यधिक लचीले गतिशील व्यावहारिक एवं अवसरवादी होते थे। इसमें रचनात्मक

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के होते हैं और सुधारवादी और प्रगतिवादी होते थे। लेकिन अपने को शासन-सत्ता में कायम रखने के लिये झूठ, बेमानी, चलाकी, भ्रष्टाचार एवं रिश्वत आदि का भी सहारा लेते हैं। इसलिए परेटो ने इन्हे सट्टेबाज कहा है। इसके विपरीत अभिजात वर्ग के लोग भार्यवादी, रुढिवादी, अंधविश्वासी, परम्परागादी, धार्मिक एवं यथास्थिति से सन्तुष्ट होते हैं। इन्हें परेटो ने रेण्डर्यश कट्टरपंथी कहा है।

परेटो ने अभिजात एवं अनभिजात वर्ग का पुनः नामक शक्ति के आधार पर किया है उसके अनुसार अभिजात वर्ग अत्यधिक चतुर एवं चालक होता है। इसलिए उसकी प्रकृति के अनुसार इन्हें लोमड़ी कहा जाता है।

अनाभिजात वर्ग को जो संख्या से अधिक होते हैं। जिनके कारण इनके पास सामूहिक शक्ति अधिक होती है। इसलिए शक्तिशाली का प्रतीक शेर को कहा जाता है।

इस प्रकार परेटो के अनुसार प्रत्येक समाज में अभिजात एवं अनाभिजात वर्ग का सामाजिक संस्तरण आवश्यक रूप से पाया जाता है। लेकिन परेटो की सामाजिक संस्तरण व्यवस्था बन्द वर्ग न होकर एक खुली वर्ग व्यवस्था है। कभी-कभी कोई वर्ग का सदस्य किसी भी वर्ग में आ-जा सकता है। इसी को परेटो ने अभिजात वर्ग का परिभ्रमण कहा है।

अभिजात वर्ग का परिभ्रमण एवं सामाजिक परिवर्तन का चक्रीय सिद्धान्त

परेटो के सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त को अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धान्त कहा जाता है।

ये परिवर्तन चक्रीय होता है। परेटो ने सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करने वाले विकासवादी रेखीय एवं निर्णयवादी आदि सभी सिद्धान्तों को भ्रामक एवं अवैज्ञानिक मानता

है। परेटो का सामाजिक परिवर्तन का यह चक्रीय सिद्धान्त समाजशास्त्र में एक महत्वपूर्ण

देन मानी जाती है।

NOTES

परेटो की मान्यता है कि प्रत्येक समाज में समाज संस्तरण के रूप में उच्च व निम्न वर्ग पाये जाते हैं और समाज व्यवस्था में परिवर्तन सदैव चक्र की भाँति होता रहता है। दूसरे शब्दों में आज का उच्च वर्ग कल का निम्न वर्ग होता है और कल का शासित वर्ग आज का शासक वर्ग हो जाता है। अतः व्यक्तियों का उच्च वर्ग से निम्न वर्ग में और निम्न वर्ग से उच्च वर्ग में शासक वर्ग से शासित वर्ग में और शासित वर्ग को शोषित वर्ग में आना जाना लगा रहता है जिसे परिप्रमण कहते हैं जिसे परेटो ने इतिहास को कुलीन तंत्रों का कब्रिस्तान कहा जाता है।

परेटो ने अभिजात वर्ग के परिप्रमण के तीन सिद्धान्त बताये हैं—

1. कोई भी वर्ग पूर्णतः बन्द नहीं होता। अतः खुली वर्ग व्यवस्था है।
2. अभिजात वर्ग के पास शक्ति होती है और यह शक्ति उन्हें भ्रष्ट कर देती है जिससे उनका पतन होने लगता है।
3. अनाभिजात वर्ग में भी चतुर एवं कुशल बुद्धिमान व्यक्ति होते हैं। वह अपने प्रयत्नों से उच्च वर्ग में प्रवेश पाने में सफल हो जाते हैं लेकिन सत्ता में पहुँचने पर वे भी स्वयं अभिजात वर्ग हो जाते हैं।